इकाई 4- चार्वाक दर्शन का परिचय एवं सिद्धान्त

4.1 प्रस्तावना

चार्वाक दर्शन से सम्बद्ध प्रथम तथा इस ब्लॉक की चतुर्थ इकाई में आपकी जानकारी के लिये यहॉ सर्वप्रथम चार्वाक दर्शन के परिचय एवं सिद्धान्त प्रस्तुत किये जा रहे हैं, इस विश्वास के साथ कि प्रायः कम प्रचलित यह वाद आपके ज्ञान को अभिव्द्ध कर पाएगा।

भारतीय दार्शनिक चिन्तक की सामान्य एवं विशिष्ट प्रायः समस्त धारा का एकमात्र अपवाद चार्वाक दर्शन है। सामान्य रूप से इस 'नास्तिक दर्शन शिरोमणि' कहा जाता है, जबकि विशिष्ट रूप से यह 'भौतिकवाद का चरम' माना जाता है। नास्तिक वेद की निन्दा करने वाले, परलोक को न मानने वाले तथा ईश्वर की सत्ता में अविश्वास करने वाले होते हैं तथा चार्वाक दर्शन नास्तिकता के तीनों गुणों से युक्त है, कदाचित् यही कारण है कि दर्शन का यह सम्प्रदाय 'नास्तिक शिरोमणि' कहलाता है। साथ ही, अन्य समस्त भारतीय दार्शनिक चिन्तन के विरुद्ध केवल इस जगत् के दृश्य तत्त्व, परम सुख, विषय, इच्छा, कामना की ही बात करने के कारण यह ''भौतिकवाद का चरम'' कहलाता है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि चार्वाक दर्शन का उल्लेख कहॉं कहॉं किया गया है?
- समझ सकेंगे कि चार्वाक दर्शन का निहितार्थ क्या है?
- जान पाएंगे कि इस दर्शन के समुपलब्ध साहित्य कौन कौन से है?
- समझ सकेंगे कि चार्वाक दर्शन के मौलिक सिद्धान्त क्या क्या हैं?

4.3.चार्वाक दर्शन

उक्त सन्दर्भ में नास्तिक की अवधारणा को यहॉं आवश्यक रूप से समझ लिया जाना चाहिए। मनुस्मृति में वेद की निन्दा करने वाले को नास्तिक कहा गया है- नास्तिको वेदनिन्दकः (2/11)। पाणिनि ने परलोक को मानने वाले को आस्तिक कहा है तथा न माननेवाले को आस्तिक कहा है- अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः (अष्ट0 4/4/60)। किन्तु समान्य चिन्तन में अनीश्वरवादी को नास्तिक कहा जाता है।चार्वाक दर्शन के उदय का मूल कारण कदाचित् उपनिषद् दर्शन का उच्च विज्ञानवाद, वैदिक कर्मकाण्ड की अतार्किकता तथा उसका दुरुपयोग, यज्ञों में पशु बलि प्रथा, तात्कालिक सामाजिक व राजनीतिक अव्यवस्था एवं अस्थिरता का विरोध था।चार्वाक, लोकायत अथ वा बार्हस्पत्य दर्शन

प्राचीन भारतीय भौतिकवाद का प्रतिनिधित्व करता है। निस्सन्देह चार्वाक के भौतिकवाद की तथाकथित परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितना कि स्वयं भारतीय दर्शन। इस क्रम में यहाँ यह स्मरणीय है कि भौतिकवादी प्रवृत्ति के बीज उपनिषदों में भी देखे जा सकते हैं। यहाँ भौतिकवाद से तात्पर्य है वह विचारधारा जिसके अनुसार विश्व का मूलभूत तत्त्व एक या अनेक रूप, जड़ात्मक है। भौतिकवादी जड़त्व से भिन्न किसी चेतन तत्त्व को स्वीकार नहीं करते। यही चार्वाक वस्तुत्त्व है।

4.3.1चार्वाक दर्शन के उल्लेख

एक व्यावहारिक सत्य है कि अच्छा तभी अच्छा है जब बुरा होगा, इसी प्रकार बुरा तभी बुरा होगा जब अच्छा विद्यमान होगा। दूसरे शब्दों में, कोई भी एक वाद समाज या शास्त्र में तभी पनपेगा जब विरोधी कोई दूसरा विरोधी वाद विद्यमान होगा। इस आधार पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वैदिक परम्परा का विरोधी वाद भी वैदिक काल में अवश्य ही रहा होगा। कदाचित् इसी वाद ने चार्वाक का स्वरूप ग्रहण किया होगा।

ऋग्वेद में इस भौतिकवाद का बीज ढॅूंढा जा सकता है। वहाँ इन्द्र की सत्ता में सन्देह करने वाले तथा तथा अपव्रती लोगों का उल्लेख प्राप्त होता है। परोक्षतः चार्वाकीय सिद्धान्त का हम इसे बीज कह सकते हैं। भौतिकवादी प्रवृत्ति के बीज उपनिषदों में भी देखे जा सकते हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् के प्रारम्भ में ऐसी अनेक धारणाओं की गिनती दी गयी है जो संसार की उत्पत्ति की व्याख्या करने का प्रयास करती हैं। इनमें से एक जगत् का मूल का कारण भूत को मानता है। इसी तरह कठोपनिषद् में भी कहा गया है कि धन के मोह से मूढ़, बालबुद्धि, प्रमादी व्यक्तियों को परलोक के मार्ग में आस्था नहीं होती, वह केवल इस लोक को मानता है, परलोक को नहीं, ऐसा व्यक्ति पुनः पुनः मेरे वश में आता है (कठ0 1/2/6)। छान्दोग्य उपनिषद् के प्रजापीत और इन्द्र-विरोचन संवाद में उल्लेख है कि असुरों का प्रतिनिधि विरोचन देहात्मवाद से ही सन्तुष्ट होकर चला गया था।(छान्दोग्य0 8-7) प्रत्यक्षतः इस वाद का उल्लेख प्रायः सारे महत्त्वपूर्ण साहित्य में प्राप्त होते हैं। बौद्ध पिटकों में लोकायत मत का नाम्ना उल्लेख है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में सांख्य और योग के साथ लोकायत दर्शन का तर्क पर आधारित दर्शन के रूप में उल्लेख है। चार्वाक दर्शन के प्रारम्भिक ग्रन्थ 'बार्हस्प्त्य सूत्र' या 'लोकायतिक सूत्र' नाम से जाना जाता है। इस पर लिखी गयी भागुरी या वर्णिका नाम की टीका का उल्लेख पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य मे प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण मिश्र विरचित नाटक प्रबोधचन्द्रोदय के द्वितीय अंक में यह उद्धरण प्राप्त होता है कि बृहस्पति ने जिस शास्त्र की रचना करके चार्वाक को समर्पित किया था उसका विस्तार चार्वाक तथा उनके शिष्यों के द्वारा किया गया है।

4.3.3 चार्वाक दर्शन के विभिन्न नाम एवं उनके अर्थ

इससे पूर्व के विवरण में चार्वाक मत से सम्बद्ध कई नामों की चर्चा की गयी है। चार्वाक, लोकायत तथा बार्हस्पत्य- ये तीन इनके नाम प्राप्त होते हैं।

चार्वाक शब्द के कई अर्थ प्राप्त होते हैं। सामान्य अवधारणा है कि चार्वाक चारु-वाक् अर्थात् मिष्टभाषी का संक्षिप्त रूप है। इसका अभिप्राय वह व्यक्ति है, जिसकी वाणी या वचन चारु या मनोहारिणी है। इसमें स्पष्टतः यह संकेत है कि जनसामान्य में यह दर्शन सहज स्वीकृत था। एक अन्य धारणा के अनुसार चार्वाक शब्द चर्व- चबाने या खाने धातु से बना है। इसके अनुसार चार्वाक मौज, मस्ती खाने-पीने मात्र में विश्वास करते थे।
लोकायत अर्थात् लोक $ आयत का तात्पर्य जनसामान्य में प्रचलित होना है। हरिभद्र ने लोकायत का अर्थ उन साधारण लोगों से किया जो विचारशून्य मूर्क्ष की तरह आचरण करते हैं। राधाकृष्णन् की दृष्टि में लोकायत भौतिकवाद के लिये सुसंस्कृत पद है। आयत का अर्थ आयतन अर्थात् आधार मानकर यह भी कहा जाता है कि लोकायत का अर्थ इस मूढ़ एवं लौकिक संसार का आधार है। एक अन्य अनुमान के अनुसार लोकायत एक तकनीकी शब्द है जिसका तात्पर्य विवाद, वितण्डा एवं कुतर्क का विज्ञान है। ऐसा इस कारण कहा गया है कि यह दर्शन छलपूर्ण वाद विवाद में रुचि लेता है और विभिन्न विषयों पर पारम्परिक दृष्टिकोण को चुनौती देता है।
बार्हस्पत्य नाम से अभिप्राय है कि इस दर्शन के प्रणेता बृहस्पति थे। यद्यपि इसका कोई निश्चित साक्ष्य नहीं है कि बृहस्पति इस दर्शन के प्रणेता थे। पुनरपि परवर्ती उपनिषद् में एक कथा प्राप्त होती है कि बृहस्पति ने असुरों को नास्तिक विद्या का उपदेश दिया था कि इसके प्रभाव से असुरों का नाश हो तथा इन्द्र निष्कण्टक अमरावती पर राज्य कर सकें।

4.3.4 चार्वाक दर्शन के साहित्य

दुर्भाग्य से इस दार्शनिक सम्प्रदाय का कोई भी ग्रन्थ प्राप्य नहीं है। इस दर्शन के सिद्धान्तों व धारणाओं को जानने व समझने के लिये हमें पूर्णतः इसके विरोधियों के द्वारा दी गयी जानकारी पर ही निर्भर रहना पड़ता है।
जयराशि भट्ट विरचित तत्त्वोपप्लवसिंह नामक ग्रन्थ को छोड़कर इस मत का कोई मौलिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। यह ग्रन्थ भी बहुत बाद का है जिसका प्रकाशन 1940 ई0 में हुआ है। किन्तु इस विषय में यह एक अनिवार्य सत्य है कि कोई भी ग्रन्थ, भले ही वह किसी सम्प्रदाय का हो, चार्वाक के कतिपय आधारभूत सिद्धान्तों का उल्लेख एवं उनका खण्डन किये बिना अपने को पूर्ण नहीं मानता। इस आधार पर एक सामान्य निर्णय यह अवश्य ही लिया जा सकता है कि प्रायः हर दार्शनिक ग्रन्थ इस वाद का एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक स्रोत बन जाता है। पुनरपि, चार्वाक दर्शन के

मतों को प्रसारित करने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका सर्वदर्शनसंग्रह, प्रबोधचन्द्रोदय तथा बार्हस्प्त्यसूत्र की रही है।

अभ्यास प्रश्न-

1. चार्वाक के अन्य नाम हैं-

(क) बार्हस्पत्य तथा लोकायत (ख) लोकायत तथा पाशुपत

(ग) पाशुपत तथा बार्हस्पत्य (घ) चार्वाक एवं पाशुपत

2. चार्वाक दर्शन के प्रारम्भिक ग्रन्थ किस नाम से जाने जाते है?

3. चार्वाक दर्शन से सम्बद्ध किन्हीं तीन ग्रन्थों के नाम बताए॑ं।

4. लोकायत का अर्थ है-

(क) जनसामान्य में प्रचलित होना (ख) सुन्दर वचन

(ग) लोगों का घर (घ) लोक वचन

4.4 चार्वाक दर्शन के सिद्धान्त

4.4.1 चार्वाक दर्शन की ज्ञानमीमांसा-

भारतीय दर्शन चिन्तन में चार्वाक दर्शन ज्ञानमीमांसा की दृष्टि से प्रत्यक्षवादी, तत्त्वमीमांसा की दृष्टि से भौतिकवादी और आचारमीमांसा की दृष्टि से सुखवादी विचारधारा है। इसकी विचारधारा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष इसका ज्ञानमीमांसीय प्रत्यक्षवाद है। अन्य समस्त भारतीय दर्शन के विपरीत चार्वाक दर्शन केवल प्रत्यक्ष को प्रमाण मानता है और अन्य प्रमाणों का निषेध करता है।

वस्तुतः इसके ज्ञानसिद्धान्त का जितना विशिष्ट पक्ष एकमात्र प्रत्यक्ष प्रमाण की स्वीकृति है, उतना ही विशिष्ट पक्ष अन्य प्रमाणों, विशेषतः 'अनुमान प्रमाण' का खण्डन भी है। उल्लेखनीय है कि भारतीय दर्शन के चार्वाकेतर सम्प्रदाय प्रमा के साधन के रूप में प्रत्यक्ष के साथ अनुमान प्रमाण के प्रामाण्य में अवश्य विश्वास करते हैं।

चार्वाक दर्शन के अनुसार यथार्थ ज्ञान का एकमात्र प्रामाणिक साधन है प्रत्यक्ष- प्रत्यक्षमेकं प्रमाणम्। चार्वाक प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य प्रमाणों की वैधता को स्वीकार नहीं करता। प्रत्यक्ष के विषय में

चार्वाकों के द्वारा दी गयी कोई भी स्पष्ट परिभाषा प्राप्त नहीं होती। प्रायः वे भी अन्य भारतीय दार्शनिकों की तरह यह स्वीकार करते हैं कि ज्ञानेन्द्रिय एवं विषय के सम्पर्क से उत्पन्न ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। इसका प्रमाण भी प्रत्यक्ष है। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं- चक्षुः, श्रोत्र, नासिका, रसना और त्वक्। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द यह पंचविध इन्द्रिय प्रत्यक्ष है। सुख, दुःख आदि का अनुभव भी इस पंचविध इन्द्रिय प्रत्यक्ष पर ही आश्रित है।

चार्वाक में प्रत्यक्ष प्रमाणविषयक चिन्तन की स्पष्टता को इस पकार समझा जा सकता है कि रूप के अभाव में जो अदृष्ट है, रस के अभाव में जो अनास्वादित है, गन्ध के अभाव में जो अनाघ्रात है, स्पर्श के अभाव में जो अस्पृष्ट है तथा शब्द के अभाव में जो अश्रुत है ऐसा चिन्तन केवल कल्पनाओं में ही हो सकता है, यथार्थ में नहीं। प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण मानने का कारण इस प्रमाण मंे प्राप्त अभ्रान्तता और निश्चयात्मकता है जो प्रत्यक्षेतर प्रमाणों में सम्भव नहीं है।

अनुमानविषयक चार्वाक चिन्तन- जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कि चार्वाक के द्वारा प्रवर्तित प्रत्यक्ष की परिभाषा प्राप्त नहीं होती। किन्तु इसके द्वारा किया अनुमान का खण्डन सर्वाधिक प्रसिद्ध है। अनुमान का यह खण्डन मध्वविरचित सर्वदर्शनसंग्रह में प्राप्त होता है। तदनुसार-

दृष्ट हेतु से अदृष्ट साध्य की सिद्धि करना अनुमान है, पर्वत पर दृष्ट धूम के ज्ञान से पर्वत पर अदृष्ट अग्नि का ज्ञान करना अनुमान है। अनुमान का आधार व्याप्ति है। यह व्याप्ति हेतु और साध्य, लिंग और लिंगी के बीच साहचर्य का नियम है। चार्वाक का इस विषय में कहना है कि अनुमान में दूसरे की उपस्थिति से एक की उपस्थिति का निश्चय किया जाता है। यह तभी सम्भव है जब दोनों वस्तु की नित्य सहवर्तिता का दृढ निश्चय हो। जैसे- धूम और अग्नि का सम्बन्ध- जहॉ जहॉ धूम है, वहॉ वहॉ अग्नि अवश्य है। किन्तु तथ्य यह है कि ऐसा नियम बनाया नहीं जा सकता। पुनः पुनः निरीक्षण करने से केवल यह सिद्ध होता है कि धुएॅं की कुछ घटनाएॅं अग्नि की घटनाएॅं होती हैं, लेकिन धुएॅं की सभी घटनाएॅं अग्नि की घटनाएॅं नहीं हो सकतीं क्योंकि इस बात की पूरी संभावना है कि ऐसी घटनाएॅं हमारे निरीक्षण में आने से रह जाएॅं। परिणामतः संशय के लिये सदैव स्थान बना रहता है और अनुमान की प्रामाणिकता स्थापित नहीं होती। प्रामाणिक अनुमान की तथाकथित घटनाओं- जहॉ धुएॅं से अग्नि का अनुमान किया गया और उस स्थान पर जाने पर यथार्थ अग्नि दिखी- को संयोग ही कहा जा सकता है।

चार्वाक दार्शन का यह स्पष्ट कथन है कि धूम और अग्नि के बीच व्याप्य-व्यापक-भाव की कल्पना निराधार एवं तर्कविरुद्ध है, क्योंकि इस प्रकार के तर्कवाक्यों को प्राप्त करने का कोई वैध साधन नहीं है। चूँकि व्याप्ति हेतु और साध्य का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है, अतः चार्वाकों की मान्यता है कि अनुमान तभी निश्चयात्मक एवं निर्दोष हो सकता है जब व्याप्ति निर्दोष एवं वास्तविक हो। किन्तु

व्याप्ति के विषय में निश्चायक रूप से ऐसा नहीं कहा जा सकता। जहाँ धुआँ होता है, वहाँ आग होती है- हम इस व्याप्ति ज्ञान को केवल तभी निश्चायक एवं प्रमाणिक मान सकते हैं जब हम प्रत्यक्ष से धूम्रयुक्त सभी पदार्थों को अग्नियुक्त जान सकें। किन्तु यह बिल्कुल असम्भव है कि हम भूत एवं भविष्य के सभी धूमवान् स्थलों को अग्नियुक्त देख सकें।

प्रत्यक्ष का सम्बन्ध केवल वर्तमान से है और हम वर्तमान समय में भी सभी धूमवान पदार्थों को अग्नियुक्त नहीं जान सकते। पुनः, यदि इस प्रकार की व्याप्ति आज सत्य भी हो तो यह भविष्य में भी सत्य होगी- इसका कोई प्रमाण नहीं है। इस प्रकार प्रत्यक्षानुभव का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है, परिणामस्वरूप वह हमें किसी भी सामान्य सम्बन्ध (व्याप्ति) का ज्ञान नहीं करा सकता।

चार्वाक का यह भी कहना है कि प्रत्यक्ष के आधार पर धूमत्व एवं वह्नित्व का ज्ञान नहीं हो सकता।

इन्द्रिय प्रत्यक्ष से केवल विशेषों का ही ज्ञान होता है, सामान्य का नहीं। जब हमारा सारा ज्ञान विशेषों तक ही सीमित है तो हमें विशेषों की सीमा का अतिक्रमण करने का कोई अधिकार नहीं है विशेषों से सामान्य की कल्पना हमारी बुद्धि की भ्रान्त कल्पना है, वास्तविक ज्ञान नहीं है। धूमत्व एक जाति या सामान्य है जो सभी धूमवान पदार्थों मंे विद्यमान रहता है। अतः जब तक सभी धूमवान एवं वह्निमान पदार्थों का प्रत्यक्ष नहीं होगा, तब तक उनके सामान्य धर्म का ज्ञान सम्भव नहीं है। अतः कुछ स्थलों पर धूमत्व एवं वह्नित्व के प्रत्यक्ष से धुएँ और अग्नि के मध्य सामान्य सम्बन्ध (व्याप्ति) की स्थापना सम्भव नहीं है।

पुनः, व्याप्ति हेतु और साध्य का निरुपाधिक नियत साहचर्य सम्बन्ध है। चार्वाक का कथन है कि प्रत्यक्ष द्वारा निरुपाधिक सम्बन्ध का ज्ञान सम्भव नहंीं है। उपाधि दो प्रकार की होती है- आशंकित और निश्चित। यदि उपाधि निश्चित है, जैसे, अग्नि एवं धुएँ में, तो व्याप्ति अवैध होगी। यदि उपाधि की आशंका है तो भी व्याप्ति वैध नहीं होगी। तात्पर्य यह है कि हम दो वस्तुओं में साहचर्य को देखकर यह नहीं कह सकते कि उनका साहचर्य निरुपाधिक है।

चार्वाक दर्शन के अनुसार अनुमान और शब्द प्रमाण भी व्याप्ति को सत्यापित नहीं कर सकते हैं। अनुमान प्रमाण से व्याप्ति को स्थापित करना इसलिए असम्भव है, क्योंकि जिस अनुमान के द्वारा हम इसकी स्थापना करेंगे वह भी व्याप्ति पर निर्भर होगा। इस प्रकार हमारा तर्क अन्योन्याश्रय दोष से ग्रस्त होगा। इस प्रकार एक अनुमान के सत्यापन के लिए किसी अन्य अनुमान की आवश्यकता होगी और उस अनुमान के लिए किसी अन्य अनुमान की। अनुमान की यह परम्परा धारावाहिक रूप में बनी ही रहेगी। इस प्रकार अनवस्था दोष का भी प्रसंग उपस्थित होगा।

व्याप्ति की स्थापना शब्द प्रमाण से भी सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रथमतः, शब्द ज्ञान का प्रामाणिक साधन नहीं है और द्वितीय, शब्द प्रमाण के आधार पर व्याप्ति को स्थापित करने के प्रयास में अनुमान शब्द प्रमाण पर निर्भर हो जायेगा। ऐसी स्थिति में अनुमान ज्ञान का स्वतन्त्र साधन नहीं रह जायेगा। पुनः, कारण-कार्य नियम के आधार पर भी व्याप्ति को स्थापित नहीं किया जा सकता, क्योंकि कारण-कार्य का सार्वभौम नियम स्वयं एक व्याप्ति है। इस प्रकार चार्वाकों का कथन है कि व्याप्ति की स्थापना किसी भी प्रमाण से सम्भव नहीं है।

इस प्रकार चार्वाक अनुमान प्रमाण की वैधता एवं निश्चयात्मकता में सन्देह व्यक्त करते हैं। उनका यह भी कथन है कि अनुमान को वैध प्रमाण तभी माना जा सकता है जब इसके द्वारा प्राप्त ज्ञान संशयरहित एवं वास्तविक हो। किन्तु अनुमान में इसका सर्वथा अभाव होता है, यद्यपि कुछ अनुमान आकस्मिक रूप से (संयोगवश) सत्य होते हैं।

चार्वाक की शब्द प्रमाणविषयक मान्यता- भारतीय दर्शन के प्रायः सारे दार्शनिक सम्प्रदायों में शब्द

प्रमाण को भी यथार्थ ज्ञान का साधन माना जाता है। आप्त पुरुषों के वचनों एवं श्रुतियों से जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे शब्द प्रमा कहते हैं और इसे उपलब्ध कराने वाले असाधारण साधन को 'शब्द प्रमाण' कहते हैं। सारी आस्तिक दर्शन परम्परा में वेदों को प्रमाण माना जाता है।

चार्वाक दर्शन ने शब्द प्रमाण का भी खण्डन किया है। किसी पुरुष के आप्त और लोकोपकारक होने के कारण उसके वाक्यों में श्रद्धा रखना अनुमान से सम्भव है, यह अनुमान स्वयं प्रमाण नहीं है। इसलिये अनुमानाश्रित शब्द को भी प्रमाण नहीं माना जाना चाहिए। यदि आप्त पुरुष प्रत्यक्षसिद्ध पदार्थों का वर्णन करते हैं तो यह वर्णन प्रत्यक्ष प्रमाण के अन्तर्गत आ जाता है। यदि वे अदृष्ट अश्रुत अज्ञात पदार्थों का वर्णन करें तो इसे उनकी कल्पनामात्र समझा जा सकता है ै यथार्थ नहीं।

चार्वाक की यह भी मान्यता है कि आप्त पुरुषों के द्वारा उच्चरित शब्दों से ज्ञानप्राप्ति होती है, अतः उसे श्रोत्रेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष ही मानना चाहिए, स्वतन्त्र प्रमाण नहीं। पुनः, आप्त पुरुषों के शब्द प्रत्यक्ष विषयों के बोध पर्यन्त ही प्रामाणिक माने जा सकते हैं। यदि उनसे अप्रत्यक्ष विषयों के बोध की धारणा प्रस्तुत की जाती है तो उनका प्रामाण्य सन्दिग्ध हो जाता है, क्योंकि उन विषयों का प्रामाण्य प्रत्यक्ष द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता। पुनः, चार्वाकों का विचार है कि शब्द से प्राप्त सभी ज्ञान अनुमानसिद्ध हैं। चूॅंकि अनुमान की ही प्रामाणिकता सन्दिग्ध है इसलिये अनुमान की तरह शब्दप्रमाण की भी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है।

चार्वाक वेदों की प्रामाणिकता का सर्वथा निषेध करते हैं। वे वेदों को असत्यता, पुनरुक्ति एवं असंगति दोषों से युक्त कहते हैं। वे वेदों को धूर्त पुरोहितों की कृति मानते हैं। वैदिक यागादि कर्मों में

भी उनका विश्वास नहीं है। इन कर्मों को वह धूर्तजनों का कृत्य मानते हैं तथा एक प्रकार से वे उन जनों की जीविका का भी उसे साधन मानते हैं। इनका मानना है कि श्राद्धादि कर्मों से मृत व्यक्ति तृप्त नहीं हो सकता। ये ईश्वर, आत्मा, वेद, परलोक, धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य आदि को भी स्वीकार नहीं करते। इनकी दृष्टि में, इनसे प्रायः स्वर्ग, नरक, यज्ञ, आत्मा, परमात्मा आदि अतीन्द्रिय विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। चूँकि इस ज्ञान को प्रत्यक्ष द्वारा सत्यापित नहीं किया जा सकता, अतः ये प्रमाण नहीं हो सकते।

उपमान प्रमाणविषयक मान्यता- चार्वाक उपमान की प्रामाणिता को भी अस्वीकार करते हैं। चूँकि उपमान का आधार सादृश्य ज्ञान है और सादृश्य का ज्ञान प्रत्यक्ष से ही होता है। अतः चार्वाक इसके लिए किसी स्वतन्त्र प्रमाण को आवश्यक नहीं मानते। पुनः, कतिपय भारतीय विचारक भी उपमान का अन्तर्भाव अनुमान में ही करते हैं। अतः अनुमान के अप्रामाणिक होने से उपमान भी अप्रामाणिक हो जाता है।

इस प्रकार अन्य भारतीय दर्शन परम्परा में स्वीकृत अनुमान, शब्द और उपमान प्रमाणों के अप्रामाणिक होने के कारण चार्वाक ज्ञानमीमांसा में प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण बचता है।

समीक्षा- चार्वाक दर्शन की प्रत्यक्षवादी ज्ञानमीमांसा के विरुद्ध भारतीय दर्शन परम्परा के अन्य सम्प्रदायों में प्रबल प्रतिक्रिया हुई, क्योंकि इसने भारतीय ज्ञानमीमांसा में न केवल एक नयी विचारधारा को जन्म दिया प्रत्युत समकालीन समस्त विचारधारा की सनातन स्थापना को सर्वथा परिवर्तित कर दिया। परिणामतः इसे अन्य विचारधारा के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। अन्य दार्शनिकों ने चार्वाक के ज्ञानसिद्धान्त के विरुद्ध निम्नलिखित आक्षेप किया-

(1) चार्वाक दर्शन ने प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण स्वीकार करके तथा इतर प्रमाणों का खण्डन करके बौद्धिक दर्शन चिन्तन के विरुद्ध अपना स्वर मुखर किया। उनके उक्त चिन्तन की सबने उपेक्षा की तथा कहा कि इस चिन्तन के आधार पर विश्व में किसी भी प्रकार की तार्किक व्यवस्था की स्थापना नहीं की जा सकती। एकमात्र प्रत्यक्ष के प्रमाणत्व से केवल खण्डित ज्ञान सम्भव है, उसकी एकता का नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष से उन्हें जोड़ने वाले किसी अनिवार्य सम्बन्ध का ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता।

(2) चार्वाक के प्रत्यक्ष की प्रामाणिकता भी निर्विवाद नहीं है। प्रत्यक्ष ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति पर निर्भर है। ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति की सीमा ही प्रत्यक्ष के निर्दुष्टत्व का निर्धारण करती है। निर्दुष्ट प्रत्यक्ष के लिए ज्ञानेन्द्रियों का अनुकूल होना भी परम आवश्यक है। ज्ञानेन्द्रियों के प्रतिकूल होने पर प्रत्यक्ष भी सदोष हो जाता है। रज्जु में सर्प की प्रतीति, बालू में जल का आभास आदि दोषपूर्ण प्रत्यक्ष के उदाहरण हैं। इस प्रकार अनुमान के प्रमाणत्व के खण्डन का आधार ही दूषित होने के कारण प्रत्यक्ष के आधार पर

अनुमान का खण्डन नहीं किया जा सकता है। प्रत्यक्ष की सीमाओं पर बिना विचार किये उसे ही एकमात्र प्रामाणिक ज्ञान घोषित करके चार्वाक ने रूढ़िवाद एवं अन्धविश्वास को ही बढ़ावा दिया है।

(3) जैन दार्शनिकों का कथन है कि चार्वाकों द्वारा अनुमान प्रमाण का खण्डन आत्मघातक है। उनके अनुसार चार्वाक विचारकों द्वारा प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण घोषित करना, परलोक, आदि प्रत्यक्ष विषयों के बारे में किसी भी प्रकार का विवेचन करना, अन्य मतों पर विचार करना तथा अपने सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करना मानो प्रच्छन्न रूप से अनुमान को स्वीकार करना ही है।

(4) चार्वाक विचारकों द्वारा व्याप्ति का निषेध अनुचित है। बौद्ध विचारकों की स्पष्ट मान्यता है कि दो वस्तुओं को जोड़ने वाले सामान्य विचार को तब तक सत्य मानना पड़ेगा जब तक वह सर्वस्वीकृत है। साथ ही वह दैनन्दिन जीवन के किसी स्थापित नियम पर आधारित है। किसी मान्य कथन का विरोध व्यावहारिक जीवन के मूल को ही उखाड़ना है।

उल्लेखनीय है कि चार्वाक विचारक भी पूर्णतः व्याप्ति का खण्डन नहीं कर पाते हैं। उनकी यह मान्यता कि 'प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है', अनुमान प्रमाण नहीं है, उनकी इस आस्था की ओर संकेत करता है कि कतिपय दृष्टान्तों में व्याप्ति सम्भव है, क्योंकि यह आगमनात्मक सामान्यीकरण का फल है।

(5) चार्वाक कृत अनुमानखण्डन का अन्य भारतीय दार्शनिकों ने प्रबल खण्डन किया है। उनके अनुसार बुद्धि द्वारा अनुमान का खण्डन नहीं हो सकता। समस्त बुद्धि-विकल्प कार्य कारणादि नियमों पर आधारित है जिनकी सार्वभौमता, निश्चितता और अनिवार्यता, स्वतःसिद्ध और स्वप्रकाश आत्मतत्त्व से आती है। इन बुद्धि विकल्पों के बिना किसी प्रकार का बुद्धि व्यवहार सम्भव नहीं होता।

(6) यद्यपि सभी विचारक शब्द स्वीकार नहीं करते तथापि आप्त वचन को नितान्त अग्राह्य घोषित करना सांसारिक व्यावहारिक एवं सामाजिक, नैतिक व्यवस्था को निर्मूल कर सकता है।

पुनरपि ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में चार्वाक के अवदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इसकी ज्ञानमीमांसा ने भारतीय विचारकों के समक्ष अनेक समस्याएँ उत्पन्न कीं जिनके समाधान के कारण भारतीय दर्शन पुष्ट एवं समृद्ध हुआ। पुनः, चार्वाक विचारकों ने भारतीय दर्शन को रूढ़िवादी एवं अन्धविश्वासी होने से बचाया। इसके ज्ञानमीमांसा का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष भारतीय चिन्तन के े बहुआयामी दृष्टिकोण एवं वैचारिक स्वतन्त्रता का प्रतिनिधित्व करना है।

4.4.2 चार्वाक दर्शन की तत्त्वमीमांसा-

चार्वाक दर्शन की तत्त्वमीमांसा उसकी ज्ञानमीमांसा की ही उपसिद्धि है। अपने प्रत्यक्षवादी ज्ञान-सिद्धान्त के आधार पर चार्वाक केवल उन्हीं तत्त्वों की सत्ता स्वीकार करते हैं जिनका प्रत्यक्ष होता है। वे इस ज्ञान-सिद्धान्त की पृष्ठभूमि में केवल जड़ तत्त्व या भौतिक पदार्थ की ही सत्ता को स्वीकार करते हैं, क्योंकि केवल उसी का प्रत्यक्ष होता है। इस प्रकार चार्वाक दर्शन तत्त्वमीमांसा की दृष्टि से जड़वादी या भौतिकवादी है। इनके ज्ञात तत्त्वमीमांसीय तथ्य इस प्रकार हैं-

(1) चार भूतों से सृष्टि की उत्पत्ति।

(2) शरीरेतर नित्य आत्मतत्त्व का निषेध।

(3) ईश्वर तत्त्व का निषेध।

(1) चार भूतों से सृष्टि की उत्पत्ति- चार्वाक के तत्त्वचिन्तन में चार महाभूतों की ही स्वीकृति है- पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। आकाश का अनुमान होता है, अतः चार्वाक उसे तत्त्व नहीं मानते े। पुनः वह इन महाभूतों को केवल स्थूलरूप मानता है। वह उनके अणुरूपत्व का निषेध करता है, क्योंकि उनका प्रत्यक्ष नहीं होता। वह इन जड़ तत्त्वों के तन्मात्रत्व को भी नहीं स्वीकार करता क्यां ेकि तन्मात्रत्व के विचार का भी आधार अनुमान है।

चार्वाक दार्शनिकों की मान्यता है कि सम्पूर्ण चराचर जगत् की सृष्टि इन्हीं चारों भूतों से हुई है। ये ही जगत् के उपादान कारण हैं। इन भूतों का विभिन्न अनुपातों में सम्मिश्रण होने से बाह्य जगत्, भौतिक शरीर, चेतना, बुद्धि और इन्द्रियाँ आदि उत्पन्न होती हैं। रूप, रस, गन्ध आदि गुणों की उत्पत्ति भी इन्हीं के संयोग से होती है। इनके संयोग के लिए किसी निमित्त कारण की आवश्यकता नहीं होती। जड़ तत्त्व अपने स्वभाव के अनुसार ही संयुक्त होते हैं और उनके स्वतः सम्मिश्रण से संसार की उत्पत्ति होती है।

(2) शरीरेतर नित्य आत्मतत्त्व का निषेध- चार्वाक का मानना है कि चैतन्य भी भौतिक तत्त्वों के सम्मिश्रण होने से जीवित शरीर में उत्पन्न होता है। अतः जीवित शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं है। चार्वाक दर्शन के अनुसार शरीर से भिन्न किसी पृथक् आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करना आवश्यक नहीं है। शरीर का चेतना से युक्त होना ही आत्मतत्त्व कहलाने के लिए पर्याप्त है। चैतन्य का प्रत्यक्ष भी शरीर के अन्तर्गत होता है। अतः 'चेतना से विशिष्ट शरीर' ही आत्मा है। व्यक्ति प्रत्यक्ष के आधार पर भी शरीर और आत्मा के तादात्म्य का अनुभव करता है। मैं कृश हूँ, मैं स्थूल हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ,- ये कथन मैं (आत्मा) और शरीर के तादात्म्य का ही बोध कराते हैं।

इस प्रकार चार्वाक जड़ तत्त्वों के आधार पर आत्मा की भी व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार जड़तत्त्वों से शरीर भी उत्पन्न होता है और उसमें पाया जाने वाला चैतन्य भी। यद्यपि जड़तत्त्वों में चैतन्य का अभाव है, तथापि उनके सम्मिश्रण से चैतन्य की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार मदिरा के विभिन्न घटकों में से किसी में भी मादकता नहीं है लेकिन उनमें विशेष प्रक्रिया से विकार उत्पन्न होने पर मादकता उत्पन्न होती है उसी प्रकार जड़तत्त्वों के विशेष सम्मिश्रण से चेतना उत्पन्न होती है- किण्वादिभ्यो मदशक्तिवद् विज्ञानम्। इस प्रकार चेतन शरीर से भिन्न आत्मा का कोई प्रमाण नहीं है।

साथ ही चेतन शरीर के आत्मत्व के कारण आत्मा की अमरता भी सम्भव नहीं है। आत्मा की अनित्यता यह सिद्ध करती है किं आत्मा से जुड़ी सभी अवधारणाएँ- पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक एवं कर्मयोग-निराधार हैं।

(3) ईश्वर तत्त्व का निषेध- चार्वाक दर्शन ईश्वर की सत्ता का निषेध करता है। प्रायः आध्यात्मिक, धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों के रक्षक तथा सृष्टि के कर्त्ता, नियामक एवं संरक्षक के रूप में ईश्वर की सत्ता स्वीकार की जाती है। चार्वाक आध्यात्मिक, धार्मिक, एवं नैतिक मूल्यों को मानसिक भ्रान्ति कहता है। वह सृष्टि की व्याख्या के लिए भी ईश्वर को आवश्यकता नहीं मानता। वह ईश्वर की कल्पना को एक धार्मिक भ्रान्ति कहता है। चूँकि ईश्वर का कोई प्रत्यक्ष नहीं होता। अतः ईश्वर का अस्तित्व भी नहीं है। उसके लिए ईश्वर जैसे किसी निमित्त कारण की भी आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार, चूँकि जड़तत्त्वों के आन्तरिक स्वभाव से ही संसार की उत्पत्ति होती है। अतः वह स्वभाववादी या यदृच्छावादी है।

समीक्षा- चार्वाक दर्शन के जड़वादी सिद्धान्त के विरुद्ध आस्तिक दर्शनोें में तीव्रतम प्रतिक्रिया हुई। जैन एवं बौद्ध सदृश नास्तिक दर्शनों ने भी चार्वाकों की तत्त्वमीमांसा को पूर्णरूपेण स्वीकार नहीं किया। भारतीय दर्शनों में चार्वाक तत्त्वमीमांसा के विरुद्ध निम्नलिखित आक्षेप प्राप्त होते हैं-

(1) चार्वाक दर्शन की यह मान्यता अनुचित है कि एकमात्र जड़तत्त्व सृष्टि की व्याख्या के लिए पर्याप्त है। जड़तत्त्व सृष्टि का उपादान कारण मात्र हो सकता है, किन्तु सृष्टि के उद्भव कारण न। जिस प्रकार कुम्भकार की सहायता के बिना मिट्टी से घड़ा नहीं बन सकता उसी प्रकार चेतन निमित्त कारण (ईश्वर) के बिना ये सृष्टि नहीं हो सकती।

(2) चार्वाक दर्शनके आत्मसिद्धान्त के विरुद्ध अन्य भारतीय दर्शनांे ने प्रबल प्रहार किया। उसके आत्म सिद्धान्त के विरुद्ध अधोलिखित आक्षेप प्राप्त होते हैं-

(क) चैतन्य विशिष्ट शरीर को आत्मा कहना अनुचित है। आत्मा में चेतना और शरीर का तादात्म्य मानना भी अनुचित है। यदि चैतन्य का अर्थ स्वचैतन्य है जो मनुष्यों में है तो इसका तादात्म्य जीवित

शरीर से नहीं किया जा सकता। यदि चेतना और शरीर के साहचर्य को नित्य भी मान लिया जाय तो भी यह नहीं सिद्ध होता है कि चेतना शरीर का धर्म है।

(ख) यदि चेतना शरीर का आवश्यक गुण होती तो उसे शरीर से अवियोज्य होना चाहिए तथा उसे शरीरपर्यन्त उसके साथ सम्बद्ध होना चाहिए। किन्तु यह यथार्थ है कि मूर्च्छा या स्वप्नरहित निद्रा में शरीर चेतना से शून्य दिखाई देती है।

(ग) यदि चेतना वस्तुतः शरीर का धर्म होती तो उसका वैसा ही ज्ञान दूसरों को भी होना चाहिए जैसा हमें होता है। किन्तु एक व्यक्ति की चेतना उसका निजी गुण है। अतः उसका जैसा ज्ञान उस व्यक्ति को होता है वैसा दूसरों को नहीं हो सकता।

(घ) शरीर स्वयं भी एक साधन है, अतः उसे वश में रखने वाले चेतन की आवश्यकता है। स्पष्ट है कि चेतना शरीर में नहीं, अपि तु शरीर के नियन्त्रणकर्त्ता में है। इस प्रकार भौतिकवादी की स्थिति स्वयं उसके विरुद्ध जाती है।

(ङ) चेतना शरीर का गुण नहीं हो सकता। यदि चेतना शरीर का गुण होगी तो शरीर का ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर, जो स्वयं चेतना का आधार है, चेतना द्वारा नहीं जानी जा सकती। अतः चेतना शरीर का गुण नहीं हो सकती।

(च) जड़तत्त्वों से चेतना की उत्पत्ति नहीं दिखाई देती। जड़तत्त्व से चेतना के उत्पन्न होने का अर्थ है कि असत् से सत् की उत्पत्ति। किन्तु ऐसा होता नहीं। वस्तुतः शून्य से शून्य ही उत्पन्न होता है, कोई वस्तु नहीं।

(छ) यदि चेतना शरीर का गुण है तो अन्य भौतिक गुणों के समान चेतना का भी प्रत्यक्ष अनुभव होना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं होता।

(3) मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ- इन कथनों से चार्वाक दर्शन शरीर को ही आत्मा सिद्ध करना चाहता है।

इन कथनों से केवल यह सिद्ध होता है कि शरीर के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि आत्मा का अस्तित्व नहीं है तो 'शरीर आत्मारहित है' इस कथन का कोई अर्थ नहीं रह जाता।
इन दोषों के बावजूद चार्वाक तत्त्वमीमांसा का प्रचलित विश्वासों पर पर्याप्त प्रभाव रहा। इसने भूतकाल के प्रति लगाव और भविष्य के आकर्षण को भंग किया। किन्तु, जब वह गंभीर चिंतन करता है तो वह भौतिकवाद से दूर चला जाता है। आश्चर्य है कि चार्वाक दर्शन ने यही कार्य नहीं किया।

अभ्यास प्रश्न

1. चार्वाक दर्शन के अनुसार यथार्थ ज्ञान का एकमात्र प्रामाणिक साधन है

(क) प्रत्यक्ष (ख) अनुमान
(ग) उपमान (घ) शब्द

2. चार्वाक के अनुसार शब्द प्रमाण नहीं है, क्योंकि

(क) यह एक प्रकार से प्रत्यक्ष ही है (ख) यह अनुमानाश्रित है
(ग) शब्द आकाश का गुण है (घ) यह उपमानाश्रित है

3. चार्वाक उपमान प्रमाण का निषेध करता है, क्योंकि उसका मानना है कि

(क) अनुमान और उपमान एक ही है
(ख) प्रत्यक्ष उपमान से भिन्न नहीं है (ग) उपमान का आधार सादृश्य ज्ञान है और सादृश्य का ज्ञान प्रत्यक्ष से ही होता है
(घ) उपमान भी प्रमाण हो सकता है।

4. चार्वाक केवल उन्हीं तत्वों को स्वीकार करता है

(क) जिनका अनुमान होता है (ख) जिनका उपमान होता है
(ग) जिनका शब्द होता है (घ) जिनका प्रत्यक्ष होता है

5. चार्वाक आध्यात्मिक, धार्मिक, एवं नैतिक मूल्यों को क्या कहता है?

4.5 सारांश

इस इकाई को पढने के बाद आप यह जान चुके हैं कि चार्वाक के चिन्तन को सार्वभौमिक रूप में प्रवर्तित करने के लिये किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ अथ वा साहित्य की रचना नहीं की गयी। बल्कि विभिन्न दार्शनिक स्रातों तथा कुछ परवर्ती रचनाओं से इसके बिखरे सिद्धान्तों को हम समझ पाए। इन्हीं स्रोतों के द्वारा चार्वाकविषयक कुछ विचारों को हम एकत्रित कर पाए। इनकी तत्त्वमीमांसा तथा ज्ञानमीमांसा को समझने लिये आज एकमात्र उपलब्ध समग्र कृति सर्वदर्शनसंग्रह है। इस पाठ में प्रस्तुत समीक्षा यह दर्शाती है कि चार्वाक ने स्थापित मान्य सिद्धान्त को न केवल अस्वीकार किया बल्कि अपके दुर्धर्ष तर्कों से उनका खण्डन भी किया। इस इकाई के अध्ययन से आप चार्वाक दर्शन के परिचय एवं सिद्धान्त से सहज ही अवगत हो पाएंगे साथ ही उन्हें अभ्सिव्यक्त भी कर पाएंगे।

4.6 शब्दावली

साध्य- वह परोक्ष तत्व, जिसका अनुमान किया जाना है, साध्य है। इसे व्यापक तथा अनुमेय भी कहते हैं।

लिंग- लीनम् अर्थं गमयति इति लिंगम्। इस प्रकार लीन अर्थात् परोक्ष साध्य का जो ज्ञान कराये वह लिंग है। इसे हेतु भी कहते हैं।

व्याप्ति- हेतु का साध्य के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध व्याप्ति है।

हेतु- व्याप्ति के कारण किसी स्थान विशेष में साध्य की सत्ता प्रमाणित करने वाला साधन हेतु है। इसे लिंग भी कहते हैं।

आप्तपुरुष- आप्त यथार्थ वक्ता को कहते हैं। यह आप्त वाक्य आप्त पुरुष के द्वारा ही सम्भव है। या यथार्थ वाक्यों का प्रयोग करने वाला आप्त पुरुष कहलाता है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.3 1. क, 2. बार्हस्पत्य सूत्र, 3. बार्हस्पत्य सूत्र, तत्त्वोपप्लवसिंह तथा सर्वदर्शन संग्रह 4. क

4.4 1. क 2. ख 3. ग 4. घ 5. मानसिक भ्रान्ति

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. झा, आचार्य आनन्द, (1969) चार्वक दर्शन, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनउ,

2. तिवारी, डॉ0 नरेश प्रसाद, (1986), चार्वाक का नैतिक दर्शन, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना

3. ऋषि, प्रो0 उमाशंकर शर्मा, (1964), सर्वदर्शनसंग्रहः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-1

4. शर्मा, चन्द्रधर, (1991), भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

5. देवराज, डॉ0 नन्दकिशोर, (1992), भरतीय दर्शन, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनउ

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) चार्वाक दर्शन के विभिन्न नाम एवं उनके अर्थो को स्पष्ट करें।

(ख) चार्वाक के प्रमाणविषयक चिन्तन पर एक निबन्ध लिखें।

(ग) चार्वाक की अनुमान विषयक अवधारणा को स्पष्अ करें।

(घ) चार्वाक के प्रमाण चिन्तन पर समीक्षा करें।

(ड) चार्वाक की तत्वमीमांसा का सार प्रस्तुत करते हुए उसकी समीक्षा करें।

इकाई 5 - चार्वाकी सिद्धान्तों की अन्य भारतीय दर्शनों में आंशिक उपस्थिति

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

चार्वाक दर्शन से सम्बद्ध यह द्वितीय तथा इस समग्र ब्लॉक की यह पॉचवीं इकाई है। इससे पूर्व के पाठ में आपने चार्वाक दर्शन के सिद्धान्तों का सविस्तर ज्ञान प्राप्त किया।

इस पाठ में आप चार्वाक दर्शन के विषय में यह जानेंगे कि इसका उल्लेख हम सामान्यतया किन अन्य दार्शनिक विचारधारा में पाए्ंगे। वस्तुतः इससे पूर्व की चर्चा से आप इतना अवश्य ही जान गये होंगे कि इस विशिष्ट दर्शन का अन्य भारतीय दर्शन की तरह इस दर्शन का कोई प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। यदि कोई ग्रन्थ था भी तो वह उपलब्ध नहीं होता। इस स्थिति में हम अन्य ग्रन्थों में उल्लिखित उद्धरणों से इसके सिद्धान्तों को जान पाते हैं। किन्तु यहॉ हम सविशेष अन्य भारतीय दर्शनों में विद्यमान परिचर्चाओं में चार्वाक की स्थिति को आधार बनाकर इस पाठ का परिवर्धन करेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि सामान्यतया अन्य किन किन भारतीय दर्शनों में चार्वाक चिन्तन प्राप्त होता है।
- समझ पाएंगे कि चार्वाक दर्शन की स्थिति अन्य भारतीय दर्शनों में कैसी है।
- साथ ही, अन्य दर्शनों से इसके मत वैभिन्य को भी जान पाएंगे।

5.3. चार्वाक दर्शन और आस्तिक सम्प्रदाय

भारतीय दर्शन की आस्तिक विचारधारा के विभिन्न सम्प्रदायों में चार्वाक दर्शन की आंशिक उपस्थिति की यहॉ परिचर्चा की जाएगी।

5.3.1 वेद में चार्वाक दर्शन की उपस्थिति-

यद्यपि नाम्ना वेद में चार्वाक का उल्लेख प्राप्त नहीं होता तथापि अन्य दार्शनिक सिद्धान्तों के समान ही चार्वाक के सिद्धान्तों का भी बीज यहॉ अवश्य ही दिख जाता है। कई ऐसे विषय हैं जो परवर्ती चार्वाक के सिद्धान्तों के अत्यन्त निकट हैं। तद्यथा-

चार्वाक दर्शन का मूल चिन्तन भूत चैतन्य की स्थापना में निरत है। वेद में भी इसकी तार्किक स्थापना देखी जा सकती है। वेद में, यज्ञ की एक अधिष्ठात्री देवता की कल्पना की जाती है। यहॉ तक कि

प्रत्येक वस्तु के लिये उक्त देवता की कल्पना की जाती है। यह कल्पना कदापि मौलिक नहीं की जा सकती, ऐसा समालोचकों का मानना है (आनन्द झा, चार्वाक दर्शन, पृ0 400)।

इस प्रकार प्रत्येक वैदिक भौतिक सम्बोधन-स्थल को देवता की कल्पना के द्वारा अभूत चैतन्य का ज्ञापक नहीं बनाया जा सकता। इसलिये भूतचैतन्य-स्थापक सन्दर्भों एवं कथनोपकथनों से समग्र वैदिक कर्मकाण्ड व्याप्त होने के कारण यही उचित मानना प्रतीत होता है कि समग्र वैदिक कर्मकाण्ड चार्वाक सम्मत भूतचैतन्य को ही मान्यता देता हुआ प्रतीत होता है। ध्यातव्य है कि एतदर्थ वेद में कहीं भी भूत शब्द का उल्लेख नहीं है। इस प्रकार भूतचैतन्य प्रधानक चार्वाक सिद्धान्त सर्वथा वैदिक है अवैदिक नहीं एवं अतिप्राचीन है आधुनिक नहीं।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में इन्द्र की सत्ता में सन्देह करने वाले तथा अपव्रत लोगों का उल्लेख है। वहॉं आस्तिक, व्रती लोगों की प्रशंसा तथा यज्ञविहीन अव्रती लोगों की निन्दा है।

5.3.2 उपनिषद् में चार्वाक दर्शन की उपस्थिति

उपनिषद् वैदिक ज्ञानकाण्ड का सार है। इसे भारतीय दर्शनों का मूल स्रोत माना जाता है। प्रायः समस्त दार्शनिक विचारधाराओं का प्रतिबिम्बन इसमें प्राप्त होता है। यद्यपि इन समस्त उपनिषदों में सांख्य, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत प्रभृति आस्तिक विचारधाराओं का ही सर्वाधिक सम्पोषण हुआ है। पुनरपि, ऐसा नहीं है कि इसमें आस्तिक विचारधारा के विरुद्ध तथा चार्वाकी विचारधारा के अत्यन्त सन्निकट चिन्तन अवश्य ही प्राप्त नहीं होता है। अतः उपनिषद् में भी कहीं यदि चार्वाक का बीज प्राप्त हो जाए तो यह असम्भव नहीं। उदाहरणार्थ ईशावास्योपनिषत् के छठे मन्त्र में यह कहा गया है कि जो व्यक्ति सारे भूतों अर्थात् प्राणियों में आत्मदृष्टि रखता है और आत्मा में समग्र भूतदृष्टि रखता है वह किसी में भी घृणा या भेदभाव करता नहीं -

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।

इस मन्त्र का निहितार्थ यह है कि इस में भूतात्मवाद की ही विशेषता वर्णित हुई है जो चार्वाक दर्शन का सार है। केनोपनिषद् में इसी भूतात्मवाद के समर्थन में यह कहा गया है कि ‘‘ इस चराचरात्मक भौतिक संसार को यदि सत्य समझा तो ठीक है और यदि ऐसा नहीं समझा तो समझो महान् विनाश प्राप्त है। प्रत्येक भूत को आत्मा समझने वाला ही मर कर अमृत होता है।’’ तद्यथा-

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।

भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्मॉल्लोकादमृता भवन्ति।।

कठोपनिषद् में कहा गया है कि धन के मोह से मूढ, बालबुद्धि, प्रमादी व्यक्तियों को परलोक के मार्ग या साधन में आस्था नहीं होती, वह केवल इस लोक को मानता है, परलोक को नहीं, ऐसा व्यक्ति बार बार मेरे अर्थात् यम या मृत्यु के वश में आता है (1/2/6)। छान्दोग्य उपनिषद् के प्रजापति और इन्द्र विरोचन संवाद में उल्लेख है कि असुरों का प्रतिनिधि विरोचन देहात्मवाद से ही सन्तुष्ट होकर चला गया था (8-7)।

5.3.3 गीता में चार्वाक दर्शन की उपस्थिति

गीता जो भारतीय चिन्तन परम्परा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, कभी भी चार्वाक मत के प्रतिपादन अथ वा समर्थन में कुछ नहीं कहती। ऐसी वस्तुस्थिति के होते हुए भी यदि आनुषंगिक रूप में यहॉं चार्वाक सिद्धान्त के समर्थक कुछ बातें मिल जायें तो चार्वाक सिद्धान्त के लिये उन बातों का महत्त्व अत्यधिक होगा।

वस्तुतः गीता की समस्त पृष्ठभूमि ही चार्वाकीय चिन्तन है। उपदेश्य अर्जुन जहॉं युद्ध को हिंसा समझते हैं उपदेशक कृष्ण इसके विपरीत यह स्थापित करते हैं कि युद्ध क्षत्रियों के लिए पापात्मक हिंसा नहीं प्रत्युत उसके विपरीत धर्मात्मक सदाचरण है। इससे साररूप में यह निर्णय उपस्थित किया गया है कि आचरण की अच्छाई एवं बुराई का मूल्यांकन परिस्थिति के आधार पर करणीय है। परिस्थिति ही उसका मापदण्ड है। मरण की समानता को लेकर युद्धगत वीरवध तथा अयुद्धगत प्राणिवध को एक समान मानना उचित नहीं। यदि विचार कर के देखा जाये तो इस प्रकार के आचरणगत अनैकान्तिक निर्णय के कारण ही धर्म की ऐकान्तिकतावादियों ने राजनीति एवं उसके दर्शनभूत चार्वाकीय दृष्टिकोण की निन्दा की है तथा उसके प्रति घृणा का भाव फैलाया है। अतः यह मानना होगा कि गीता पर चार्वाक दृष्टिकोण का प्रभाव अवश्य है।

इसी तरह द्वितीय अध्याय के 42वें पद्य से लेकर 45वें पद्य पर्यन्त पारम्परिक वेदवाद की निन्दा की गयी है। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो इस प्रसंग में विस्तारपूर्वक वर्णित चार्वाकीय वेदवाद के ऊपर ही आक्षेप उपस्थित किया गया है। चतुर्थ अध्याय के 21वें पद्य में यतचित्तात्मा शब्द में प्रयुक्त आत्म शब्द का प्रयोग शरीर अर्थ में किया गया है। शंकराचार्य ने भी इसका अर्थ शरीर ही किया है। पंचम अध्याय के 7वें पद्य में विजितात्मा का अर्थ शरीर लिया गया है शरीरातिरिक्त आत्मा नहीं। आचार्य शंकर ने भी इसका अर्थ विजितदेह अर्थात् अपने देह पर विजय पाने वाला किया है। ध्यातव्य है कि चार्वाक शरीरात्मवाद को ही मानता है। ऐसी परिस्थिति में यह मानना ही पड़ेगा कि गीता चार्वाक मत से भले ही पूर्णतः नहीं किन्तु आंशिक रूप से अवश्य ही प्रभावित है।

अठारहवें अध्याय के 48वें पद्य में कहा गया है कि कोई भी कर्म यदि सहज हो तो सदोष होने पर भी अर्थात् किसी कारणवश अनुचित माने जाने पर भी सहसा उसे नहीं छोड़ देना चाहिए। अर्थात् कोई भी कार्य परित्याज्य नहीं है। इस प्रकार निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि यहॉ चार्वाकीय

विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

5.3.4 न्याय में चार्वाक दर्शन की उपस्थिति

न्याय दर्शन वस्तुतः प्रमाण पर आधारित एक वस्तुवादी दर्शन है। वस्तुतः दर्शन क्षेत्र में प्रमाणमीमांसीय क्रान्ति लाने का श्रेय भी इसी दर्शन को जाता है। यह कह पाना कि न्याय दर्शन में चार्वाक मत का समर्थन या समन्वय हुआ है तो यह शोध का विषय हो सकता है, किन्तु अपने मत के समर्थन में तथा अपने मत की स्थापना के लिये अन्य मत के खण्डन के क्रम में इस विचारधारा की आंशिक उपस्थिति देखी जा सकती है। तद्यथा-

न्याय सिद्धान्तमुक्तावली में आत्मा की स्थापना के क्रम में चार्वाक के शरीरात्मवाद का खण्डन प्राप्त होता है- ननु शरीरस्यैव कर्तृत्वमस्त्वत आह-

शरीरस्य न चैतन्यं मृतेषु व्यभिचारतः।

तथात्वं चेदिन्द्रियाणामुपघाते कथं स्मृतिः।।

वस्तुतः विश्वनाथ ने यहॉ चार्वाक के मत को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया है। चार्वाक शरीर को ही आत्मा मानता है। शरीर को ही आत्मा मानने पर यह आपत्ति हो सकती है कि मृत अवस्था में शरीर बना रहता है फिर चैतन्य क्यों नहीं रहता? इस पर चार्वाक का कहना है कि न्याय-वैशेषिक के मत में यह माना जाता है कि मुक्त अवस्था में चैतन्य का अभाव मान लिया जाएगा, क्योंकि जिस प्रकार प्राणाभाव न्याय-वैशेषिक के मत में मुक्त दशा में ज्ञान के अभाव का कारण है, इसी प्रकार हमारे मत में भी प्राणाभाव ही मृत शरीर में ज्ञानाभाव का कारण हो जाएगा।

इसी प्रकार आस्तिक नास्तिक विवेचन प्रसंग में, न्याय भाष्य में वात्स्यायन ने एक दृष्टान्त देते हुए यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि चार्वाक नास्तिक नहीं थे। वात्स्यायन का मानना है कि ''नास्तिक यदि दृष्टान्त को मानेगा तो वह नास्तिक नहीं रह पाएगा और यदि वह दृष्टान्त को नहीं मानेगा तो किसके सहारे वह अपना विरोधी पक्ष का खण्डन करेगा?''-

नास्तिकश्च दृष्टान्तमभ्युपगच्छन्नास्तिकत्वं जहाति। अनभ्युपगच्छन् किं साधनः परमुपालभेत?- न्यायदर्शन, वात्स्यायनभष्य।

इस कथन से यही सिद्ध होता है कि नास्तिक वही कहलाता होगा जो दृष्टान्त नहीं मानता होगा। दृष्टान्त को न मानने का अर्थ होता है प्रत्यक्ष को न मानना। किन्तु चार्वाक प्रत्यक्ष को तो मानता ही था बिना किसी दृष्टान्त का वह अपने विचारों का भी प्रवर्तन नहीं करता था। इस प्रकार किसी न किसी रूप में न्याय वैशेषिक दर्शन में चार्वाक की आंशिक उपस्थिति देखी जा सकती है।

5.3.5 अद्वैत वेदान्त में चार्वाक दर्शन की उपस्थिति

ब्रह्मसूत्र के ऊपर भाष्य लिखकर शंकराचार्य ने अद्वैत वेदान्त का प्रवर्तन किया था। किन्तु अपनी इस विचारधारा का विश्लेषण उन्होंने अपने अन्य ग्रन्थों में भी किया। ब्रह्मसूत्र के ही अध्यास प्रकरण में उन्होंने चार्वाक का उल्लेख लोकायत कहकर किया है। इससे इतना स्पष्ट है कि आचार्य शंकर चार्वाक या लोकायत की विचारधारा से पूर्णतया अवगत थे।

इसके अतिरिक्त शंकराचार्य के अन्य ग्रन्थ ''सर्वसिद्धान्त संग्रह'' में भी चार्वाक विचार का पर्याप्त विस्तार मिलता है। यद्यपि इस विषय में सन्देह है कि यह आद्यशंकराचार्यविरचित है किन्तु जब तक कोई प्रबल बाधक नहीं प्राप्त होता तब तक इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जाना चाहिए। शंकराचार्य ने अपने इस ग्रन्थ के द्वितीय प्रकरण का ''लौकायतिक पक्ष प्रकरण'' नाम दिया है-

लौकायतिकपक्षे तु तत्वं भूतचतुष्टयम्।

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुरित्येव नापरम्।। 298

इस प्रकरण में शंकराचार्य ने लौकायतिक विचारधारा का स्वरूप वर्णन इस प्रकार किया है-

''लौकायतिक पक्ष में तो पृथिवी जल, तेज और वायु ये चार ही तत्व हैं, और नहीं। प्रत्यक्षगम्य ही वस्तुए मान्य हैं, अदृष्ट मान्य नहीं हैं, क्योंकि यहॉ देखा जाता नहीं। जो लोग अदृष्ट मानते हैं वे भी उसे दृष्ट अर्थात् देखी जाने वाली वस्तु कहॉ कहते हैं? यदि किसी ने उस अदृष्ट को देखा है तो फिर वे लोग उसे अदृष्ट क्यों कहते हैं? जिसे कभी कोई भी देख न पाये वह शशशृंग आदि के तुल्य होने के कारण ''सत्'' कैसे हो सकता? सुख और दुःख के सहारे भी धर्म ओर अधर्म की कल्पना नहीं की जा सकती। क्योंकि लोग सुखी और दुखी स्वभावतः भी हो सकते हैं। अतः स्वभाव से अतिरिक्त और कोई सुख दुःख का कारण नहीं। मयूर के पंखों को भला कौन चित्रित करता है? कोकिलों को भला कौन मधुरकूजन सिखलाता है? मैं मोटा हूँ , मैं तरुण हूँ , मैं तो वृद्ध हो गया, मैं अभी युवक हूँ - इस प्रकार प्रतीतियॉ आत्मा के सम्बन्ध में होती हैं, अतः उक्त विशेषणों से युक्त शरीर ही है आत्मा। उससे भिन्न अन्य और कोई नहीं। भौतिक जड़ वस्तुओं में जो चेतना देखी जाती है उसे पान सुपारी चूना और खैर आदि के संयोग से होने वाले लाल रूप के समान सांयोगिक समझना चाहिए। इस

लोक से अन्य कोई स्वर्ग या नरक नहीं है। शिव-लोक आदि की बातें वंचकों एवं अज्ञों की कल्पनामात्र हैं। युवती संगमज सुख के अतिरिक्त कोई स्वर्गीय अनुभव नहीं है। महीन कपड़े, सुगन्धित मालाए एवं चन्दन लेपन इत्यादि जनित सुखों को भी स्वर्गीय सुख कहा जा सकता है। मोक्ष मरण ही है और वह भी शरीर से होने वाले प्राणनिर्गमन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति को किसी प्रकार का आयास नहीं करना चाहिए। तप, उपवास आदि के द्वारा अपने को सुखाना अज्ञान का ही काम है। पातिव्रत्य, सुवर्णदान, भूमिदान, मन्त्रपूर्वक परिमार्जित भोजन आदि के औचित्य की कल्पना उन दुर्बलों के द्वारा की गयी जो कि बुद्धिमान् थे और दारिद्र्य के कारण अपना पेट भरना चाहते थे। देवमन्दिर, जलपान, व्यवस्था, यज्ञ, कूप, उद्यान आदि की प्रशंसा भला पथिकों छोड़कर और कौन करता है? इसीलिये बृहस्पति ने अग्निहोत्र, वेदपारायण, त्रिदण्डधारण, भस्मलेपन आदि को बुद्धि एवं सामर्थ्यहीन व्यक्तियों की जीविका बतलाया है। इसलिये बुद्धिमानों को चाहिए कि खेती, पशुपालन, वाणिज्य एवं दण्ड नीति आदि दृष्ट उपायों द्वारा सांसारिक भोगों का अनुभव करें।'' (आनन्द झा, चार्वाक दर्शन, पृ0 446-447)

इस सन्दर्भ में, वेदान्तिक दृष्टि से शंकराचार्य के द्वारा चार्वाक के मतों के समर्थन का विश्लेषण यहॉ आवश्यक है। ध्यातव्य है कि शंकर ने चार्वाक के इन मतों का उल्लेख खण्डन के लिये किया है मान्यता देने के लिये नहीं। किन्तु उनके इस मत वर्णन में कुछ ऐसी बातें अवश्य कही गयी है जिससे उसके अतिप्राचीन स्वरूप का एवं मान्यता का आभास प्राप्त होता है। बिन्दुशः इसे इस प्रकार समझा जा सकता है-

(क) शंकराचार्य ने सर्वमतसंग्रह में लोकायत पक्ष न कहकर इसके लिये लौकायतिक पक्ष उद्धृत किया है जिससे एक सुव्यवस्थित एवं दीर्घकालिक लोकादृत विचारधारा की अनुभूति होती है।

(ख) बृहस्पति के सन्दर्भ में उदधृत मत, कि अग्निहोत्र आदि कुछ असमर्थों‌ं के जीविकार्थ प्रवर्तित है, में अग्निहोत्र आदि की अकरणीयता नहीं बतलायी गयी है। क्योंकि व्यावहारिक रूप से जीवनोपाय सर्वार्थ आवश्यक है।

(ग) सार रूप में कथित यह वाक्य कि बुद्धिमानों को चाहिए कि खेती, पशुपालन, वाणिज्य व्यापार आदि को अपनाकर सुखी बनें, से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लोकायत विचारधारा अति प्राचीन काल में उच्छृंखल नहीं, पूर्णसंयत एवं सुशृंखल थी।

अस्तु, लक्ष्य या विषय कुछ भी हो किन्तु शंकराचार्य के द्वारा चार्वाक दर्शन के मतों का इस प्रकार उद्धृत किया जाना निस्सन्देह चार्वाक के विषय में व्याप्त आधुनिक विश्वास का प्रतीप रूप प्रवर्तित

करता है। ऐसा नहीं है कि केवल शंकर ने ही चार्वाक का विरोध किया बल्कि अन्य दर्शन ने भी पुरजोर इसका विरोध किया।

अभ्यास प्रश्न

1. यज्ञ में कल्पना की जाती है

(क) वेद की (ख) एक अधिष्ठात्री देवी की

(ग) इन्द्र की (घ) सूर्य की

2. केनोपनिषद् में समर्थन मिलता है-

(क) देहात्मवाद का (ख) इन्द्रियात्मवाद का

(ग) भूतात्मवाद का (घ) इनमें से कोई नहीं

3. गीता के पॉंचवें अध्याय में प्रयुक्त विजितात्मा शब्द का अर्थ शंकराचार्य ने लिया है-

(क) विजित देह (ख) विजित मन

(ग) विजित इन्द्रिय (घ) विजित चित्त

4. शंकराचार्य के द्वारा प्रवर्तित लोकायतिक विचारधारा का प्रवर्तन प्राप्त होता है-

(क) सर्वदर्शनसंग्रह (ख) षड्दर्शनसमुच्चय

(ग) सर्वार्थसिद्धि (घ) सर्वमतसंग्रह

5. विश्वनाथ ने न्यायसिद्धान्त मुक्तावली में शरीरात्मवाद का खण्डन किया है। इस वाद का प्रवर्त्तन किया है-

(क) विश्वनाथ ने (ख) चार्वाक ने

(ग) शंकर ने (ग) महावीर ने

5.4 चार्वाक दर्शन और नास्तिक सम्प्रदाय

यद्यपि चार्वाक स्वयं नास्तिक सम्प्रदाय में परिगणित है तथापि कुछ अन्य नास्तिक विचारधारा हैं जो चार्वाक का तो विरोध करते ही हैं साथ ही, उनके मत को उद्धृत करते हुए उन मतों से सहमति भी प्रकट करते हैं। इसी सन्दर्भ में यहाँ नास्तिक विचारधारा में चार्वाक की उपस्थिति का अन्वेषण किया जा रहा है।

5.4.1 जैन दर्शन में चार्वाक की उपस्थिति

जैन दर्शन के आचार्य हरिभद्र सूरि विरचित षड्दर्शनसमुच्चय में चार्वाक एवं इसके सिद्धान्तों का विवरण प्राप्त होता है। यहाँ चार्वाक मत का स्वरूप इस प्रकार उपस्थित किया गया है-

लोकायता वदन्त्येवं नास्ति देवो न निर्वृतिः।

धर्माधर्मौ न विद्येते न फलं पुण्यपापयोः।। षड्दर्शनसमुच्चय, चार्वाक मत

''अर्थात् लोकायतों का कहना है कि न देवों का अस्तित्व है और न निर्वृति अर्थात् स्वर्ग या अपवर्ग है। धर्म और अधर्म भी नहीं है और इसलिये उनके फल भी नहीं हैं। चार्वाक स्त्रियों से भी कहते हैं कि हे भद्रे! जितना तुम देखती हो या तुम्हारे इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य है, उन्हें ही प्रामाणिक समझो। शास्त्र के आधार पर जो लोग स्वर्ग अपवर्ग , पाप पुण्य आदि का उपदेश देते हैं उसे तुम भयानक जंगली जानवर के पॉव के समान समझो-

एतावानेव लोकोयं यावानिन्द्रिगोचरः।

भद्रे! वृकपदं पश्य यद्वदन्ति बहुश्रुताः।। षड्दर्शनसमुच्चय, चार्वाक मत

हे रमणी! खाओ, पीओ मौज करो जो बीत जाएगा वह तेरा नहीं होगा। गया समय फिर लौटता नहीं। जब तक यह शरीर वर्द्धिष्णु है फलतः युवावस्था युक्त है, तभी तक वास्तविक है। और पृथिवी, जल, तेज तथा वायु ये चार भूत ही हम चार्वाकियों के मत में तत्व हैं। ये स्वयं चैतन्य के आश्रय हैं। चार्वाक का यह भी मानना है कि पृथिवी आदि भूतों का संघात होने पर देहादि संभव होता है। मद्य के अंग भूत भात आदि के सड़ने से मदशक्ति के समान भौतिक देहों में आत्मता होती है अर्थात् चैतन्य होता है। इसलिये दृष्ट ऐहिक फलों को छोड़कर जो लोग अदृष्ट पारलौकिक फलों के लिये प्रवृत होते हैं यह उनकी अत्यन्त विमूढता है, अर्थात् अज्ञान है ऐसा चार्वाकियों का मानना है। साधनीय देवपूजन आदि आचरण और निवृति अर्थात् त्याग से जो कुछ लोगों को प्रसन्नता होती है वह शून्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं अतः वह निरर्थक है''-

साध्यवृत्तिनिवृत्तिभ्यां या प्रीतिर्जायते जने।

निरर्था सा मता तेषां सा चाकाशात्परा न हि।। षड्दर्शनसमुच्चय, चार्वाक मत (आनन्द झा, चार्वाक दर्शन, पृ0 446-447)

5.4.2 रसेश्वर दर्शन में चार्वाक दर्शन की उपस्थिति

यद्यपि रसेश्वर दर्शन को दार्शनिक प्रस्थान के रूप में सार्वभौमिक स्वीकृति नहीं है पुनरपि, सर्वदर्शनसंग्रह में माधवाचार्य ने एक दर्शन प्रस्थान के रूप मंे इसे उद्धृत किया। समालोचकों की दृष्टि में माधवाचार्य ने वहाॅ जिस रूप में इस विचारधारा का प्रवर्तन किया है वह किसी न किसी रूप में चार्वाकीय विचारधारा का ही विस्तार प्रतीत है।

सर्वदर्शनसंग्रह के रसेश्वर दर्शन विवेचन प्रसंग में कहा गया है कि ''छः दर्शनों के'' अन्दर मुक्ति की बातें कही गयी ह वह सत्य है किन्तु शरीरपात अर्थात् मरण के अनन्तर। इसलिये अन्य दर्शनीय मुक्ति हस्तगत आमलक के समान प्रत्यक्षतः उपलब्ध नहीं हो पाती। इसलिये रसायनात्मक रस अर्थात् शुद्ध पारद के द्वारा शरीर की रक्षा करनी चाहिए अर्थात शरीर को नित्य बना लेना चाहिए-

षड्दर्शनेपि क्तिस्तु दशितापिण्डपातने।

करोमलकवत्र्मतापि प्रत्यक्षानोपपद्यते।।

तस्मात्ति रक्षत्पिण्डं रसैश्चैव रसायनैः।।3।।

वहाॅ ''अन्य दर्शनीय मुक्ति प्रत्यक्षतः उपलब्ध नहीं होती'' इस कथन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि रसेश्वर दर्शन भी प्रत्यक्ष को उसी प्रकार प्रमाण मानता है जिस प्रकार चार्वाक दर्शन। शरीर को नित्य मान लेने पर भूतात्मवाद, फलतः भूत चैतन्य स्वतः प्राप्त हो जाता है और प्रत्यक्ष मात्र प्रमाणता भी इस चिन्तन को स्वीकार है ही। ध्यातव्य है कि ये दोनों मौलिक सिद्धान्त ही चार्वाक के विशिष्ट सिद्धान्त हैं। इसी प्रकार रसेश्वर दर्शन को जो परमेश्वर तादात्म्यवादी कहा गया है वह भी चार्वाक के महासमवायात्मक भूताद्वैत की तत्त्वता की मान्यता के साथ संगत हो जाती है।

अभ्यास प्रश्न

1. वात्स्यायन के अनुसार नास्तिक का अर्थ है-

(क) आत्मा को नहीं मानने वाला (ख) ईश्वर को न मानने वाला

(ग) वेद की निन्दा करने वाला (घ)दृष्टान्त को नहीं मानने वाला

2. चार्वाक स्त्रियों को भी सम्बोधित करते प्रतीत होते हैं। यह उद्धरण हमे मिलता है-

(क) षड्दर्शनसमुच्चय में (ख) सर्वदर्शनसंग्रह में

(ग) न्यायसिद्धान्त मुक्तावली में (घ) सर्वमत संग्रह में

3. समालोचकों की दृष्टि में चार्वाकीय विचारधारा का विस्तार है-

(क) जैन दर्शन (ख) बौद्ध दर्शन

(ग) सर्वदर्शन (घ) रसेश्वर दर्शन

4. ''अन्य दर्शनीय मुक्ति प्रत्यक्षतः उपलब्ध नहीं होती'' इस कथन से यह प्रतीत होता है कि

(क) चार्वाक प्रत्यक्ष को नहीं मानता है

(ख) बौद्ध दर्शन ही प्रत्यक्ष को मानता है

(ग) रसेश्वर दर्शन प्रत्यक्ष को प्रमाण मानता है

(घ) इनमें से काई नहीं।

5. रसेश्वर दर्शन के अनुसार शरीर को नित्य बनाने के लिये किस तत्त्व से शरीर की रक्षा करनी चाहिए?

5.5 सारांश

इससे पूर्व की इकाई में आपने चार्वाक दर्शन के मूल सिद्धान्तों को जाना। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि चार्वाक विचारधारा किसी एक काल में किसी आकस्मिक घटना के कारण विकसित नहीं हुआ बल्कि यह विचारधारा वैदिक काल से ही समानान्तर रूप में चली आ रही है। यही कारण है कि वेद से लेकर समकालीन सारे दर्शन चिन्तन में इसकी उपस्थिति देखी जाती है। वेद में तो साथ साथ यह शास्त्रार्थ चलती दिखाई देती हैं। यास्काचार्य विरचित निरुक्त में तो कौत्स के प्रश्नों में स्पष्टतया इसका प्रतिबिम्बन देखा जाता है। अस्तु, इन दर्शनों में कहीं तो इसकी उपस्थिति विस्तृत रूप में देखी जाती है कहीं आंशिक रूप में। यह उपस्थिति या तो चार्वाक दर्शन के समर्थन में है तो कहीं उन उन दर्शनों में अपने मत की स्थापना क्रम में विरोधी लक्ष्य बनकर विद्यमान है।

इसलिये प्राप्त उद्धरणों के आधार पर वेद, उपनिषद्, वेदान्त, न्याय वैशेषिक, जैन आदि दार्शनिक विचारधाराओं में चार्वाक की उपस्थिति का अन्वेषण किया गया है।

इस पॉचवें इकाई के अध्ययन से चार्वाक के मतों को जानकर आप अन्य दार्शनिक विचारधाराओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने में सक्षम हो पाएॅंगे साथ ही यह भी जान पाएॅंगे कि अन्य दार्शनिक विचारधाराओं की दृष्टि में चार्वाक की स्थिति क्या है?

5.6 शब्दावली

देहात्मवाद- जिस सिद्धान्त में देह अथ वा शरीर को आत्मा माना जाता है, उसे देहत्मवाद या शरीरात्मवाद कहा जाता है। ध्यातव्य है कि चार्वाक देह या शरीर को ही आत्मा मानते हैं।
भूतात्मवाद- देहात्मवाद या शरीरात्मवाद की तरह ही भूत अर्थात् प्राणी को आत्मा के रूप में मानना भूतात्मवाद है।
रसेश्वर- माधवाचार्य विरचित सर्वदर्शनसंग्रह में नवम दर्शन के रूप में रसेश्वर को एक दर्शन माना है। इसे आयुर्वेद दर्शन भी कहा जाता है। इस में पारद अथ वा रस से जीवन्मुक्ति की बात कही जाती है। इसकी गणना माहेश्वर के चार सम्प्रदायों में की जाती है।
अध्यास- यह एक प्रकार का भ्रम है। अवास्तविक तत्त्व के ऊपर वास्तविक तत्त्व का आरोपण

अध्यास है। यथा- सीपी के ऊपर रजत का आरोपण। यह अद्वैत वेदान्त के द्वारा प्रवर्तित एक चिन्तन है जिसके आधार पर वह ब्रह्म के अद्वैतत्व की स्थापना करते हैं।

अग्निहोत्र- वैदिक परम्परा में गृहस्थाश्रम में अनुष्ठीयमान एक विशिष्ट यज्ञ है। चार्वाक ने वैदिक कर्मकाण्ड पर वाचिक प्रहार के क्रम में अग्निहोत्र करने वाले को बुद्धि तथा पुरुषार्थ से रहित कहा है।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.3 1. ख, 2. ग, 3. क, 4. घ, 5. ख

5.4 1. घ, 2. क, 3.घ, 4. ग, 5. शुद्ध पारद

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. झा, आचार्य आनन्द, (1969) चार्वक दर्शन, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनउ,
2. तिवारी, डॉ0 नरेश प्रसाद, (1986), चार्वाक का नैतिक दर्शन, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना

3. ऋषि, प्रो0 उमाशंकर शर्मा, (1964), सर्वदर्शनसंग्रहः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-1

4. शर्मा, चन्द्रधर, (1991), भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

5. देवराज, डॉ0 नन्दकिशोर, (1992), भरतीय दर्शन, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनउ

6. सर्वानन्द पाठक, चार्वाक षष्टि, नवनालन्दा विहार रिसर्च पब्लिकेशन्स

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) प्रारम्भिक दार्शनिक विचारधारा में चार्वाक दर्शन की आंशिक उपस्थिति को विस्तारपूर्वक समझाएं।

(ख) श्रीमद्भगवद्गीता में चार्वाक दर्शन की उपस्थिति पर एक निबन्ध लिखें।

(ग) नास्तिक विचारधारा में किस प्रकार चार्वाक के मत को ढूंढा जा सकता है? सोदाहरण समझाएं।

(घ) रसेश्वर दर्शन के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए चार्वाक दर्शन के साथ उसके साम्य को स्पष्ट करें।

(ड) अन्य भारतीय दर्शन के विशिष्ट सन्दर्भ में चार्वाक के स्थान का निर्धारण करें।

इकाई 6 - चार्वाक दर्शन का वर्तमान व्यावहारिक व सांसारिक जीवन से सम्बन्ध

6.1 प्रस्तावना

चार्वाक दर्शन से सम्बद्ध यह तीसरी तथा इस समग्र ब्लॉक की यह छठी इकाई है। इससे पूर्व के पाठ में आपने चार्वाक दर्शन के सिद्धान्तों का सविस्तर ज्ञान प्राप्त किया। उसे जानकर आप निस्सन्देह चार्वाक की ज्ञानमीमांसा तथा तत्त्वमीमांसा को भली भाँति समझ लिया होगा। आपने यह भी जाना होगा कि अपनी मान्यता की स्थापना के लिये वे किसी भी शास्त्र को प्रमाण नहीं मानते, परम्परा एवं शास्त्र के विरुद्ध जा सकते है। साथ ही, अपने तर्क को ही प्रधान मानते हैं।

अस्तु, उक्त परिचर्चा से सर्वथा भिन्न इस इकाई में हम चार्वाक दर्शन की बहुचर्चित विचारधारा का न केवल सांसारिक जीवन से सम्बन्ध के विषय में जानेंगे प्रत्युत व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध तथा इसकी उपादेयता के विषय में भी जानने का प्रयास करेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि आज चार्वाक दर्शन क्यों प्रासंगिक है।
- समझ सकेंगे कि चार्वाक दर्शन रूढ़ियों का विरोध करता है, सुख को ही एकमात्र प्राप्तव्य समझता है तथा काम के प्रति समर्पित है।
- पुरुषार्थ के विषय में किस प्रकार अन्य दार्शनिक विचारधारा से भिन्न विचार रखता है।
- एतदर्थ सर्वप्रथम हमें चार्वाक दर्शन की आचारमीमांसा अथ वा नीतिमीमांसा समझनी पड़ेगी। ध्यातव्य है कि इससे पूर्व के पाठ में आचारमीमांसाविषयक पाठ प्रस्तावित था, पुनरुक्ति दोष से बचने के लिये जिसका विवेचन वहाँ नहीं किया गया। आपलोगों के बोधार्थ उसकी परिचर्चा यहीं की जा रही है-

6.3. चार्वाक दर्शन की आचारमीमांसा

6.3.1 भूमिका

चार्वाक दर्शन की आचारमीमांसा उसकी ज्ञानमीमांसा एवं तत्त्वमीमांसा की परिणति है। इसमें मानव का स्वरूप और पुरुषार्थ का स्वरूप पूर्णतया परिवर्तित हो जाता है। भारतीय विचारधारा में मोक्ष परम पुरुषार्थ है। धर्म मोक्ष की प्राप्ति का साधन है। अर्थ एवं काम धर्म से नियन्त्रित होता है। चूँकि चार्वाक तत्त्वमीमांसा में मनुष्य का आध्यात्मिक स्वरूप भौतिक बन जाता है, अतः उसके प्राप्तव्य अभीष्ट की प्राथमिकता भी बदल जाती है। ऐसी स्थिति में मोक्ष गौण हो जाता है, धर्म लक्ष्यविहीन हो जाता है,

काम परम पुरुषार्थ बन जाता है और अर्थ उसकी प्राप्ति का एकमात्र साधन। यहॉं उक्त चारों पुरुषार्थों की चार्वाकीय विवेचना प्रस्तुत की जा रही है-

6.3.2 चार्वाक दर्शन की मोक्षविषयक अवधारणा-

भारतीय विचारधारा में मोक्ष दुःखों के आत्यन्तिक अभाव की अवस्था है, यही मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना जाता है।वहॉं इसी को परम पुरुषार्थ कहा गया है। कुछ विचारकों के अनुसार मोक्ष इसी जीवन में प्राप्तव्य है तो कतिपय अन्य विचारकों के अनुसार मृत्यु के उपरान्त इसकी उपलब्धि होती है। बौद्ध दर्शन का निर्वाण, सांख्य एवं योग दर्शन का कैवल्य, जैन, न्याय-वैशेषिक एवं वेदान्त विचारधाराओं का मोक्ष मानव जीवन का परम लक्ष्य है। मीमांसक विचारक स्वर्ग को, जो पूर्ण आनन्द की अवस्था है, मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानते हैं।

चार्वाक के अनुसार मृत्यु ही मोक्ष है- मरणमेव अपवर्गः अथ वा मरणमेव मोक्षः। सर्वदर्शनसंग्रह में मोक्ष का लक्षण इस प्रकार दिया गया है- देहच्छेदो मोक्षः। अर्थात् देह या आत्मा का विनाश ही मोक्ष है। यदि मोक्ष से तात्पर्य आत्मा का शारीरिक बन्धन से मुक्त होना है तो यह सम्भव नहीं है, क्योंकि जीवित शरीर ही आत्मा है। शरीर से भिन्न आत्मा का कोई स्वरूप ही नहीं है। यदि मोक्ष का अर्थ जीवन काल में ही दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति है तो यह असम्भव है, क्योंकि शरीर-धारण और सुख-दुःख में अवियोज्य सम्बन्ध है। चार्वाक के अनुसार सुख की कामना तथा मृत्यु के उपरान्त मोक्ष की अवधारणा निराधार है, क्योंकि यह परलोक की अवधारणा पर आधारित है और परलोक के लिए कोई प्रमाण नहीं है। अतः मोक्ष की धारणा न केवल भ्रमजन्य है बल्कि तर्कविरुद्ध भी है।

6.3.3 चार्वाक दर्शन की धर्मविषयक अवधारणा –

भारतीय विचारधारा में धर्म सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों का प्रणयन ही धर्म की स्थापना के लिये किया गया है। इसे ही जगत् की प्रतिष्ठा कहा गया है। त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) में इसका मूर्धन्य स्थान है। धर्म का प्रमाण वेद है। किन्तु चार्वाक दर्शन के अनुसार धर्म मूर्खतापूर्ण मतिभ्रम एवं एक प्रकार का मानसिक रोग है न ईश्वर का अस्तित्व है एवं न नित्य आत्मा का। धार्मिक अन्धविश्वासों एवं पक्षपातों के कारण मनुष्य को परलोक, ईश्वर, स्वर्ग, नरक आदि की कल्पना करने की आदत बन जाती है।

चार्वाक वेदों की घोर निन्दा करता है। उनके अनुसार वेद अविश्वसनीय हैं, क्योंकि वे असत्यता, असंगति एवं पुनरुक्ति के दोषों से भरे पड़े हैं। वेद के रचयिता तीन है- भाण्ड, धूर्त और निशाचर। अग्निहोत्र, तीनों वेद, तपस्वी के त्रिदण्ड और शरीर में भस्म लगाना- ये सब उन लोगों की जीविका के साधन हैं जो ज्ञानशून्य एवं पुंस्त्वविहीन हैं। वेदों में प्राप्त धर्म, अधर्म, स्वर्ग, नरक, यज्ञ, आत्मा,

ईश्वर, परलोक, पुनर्जनम आदि अतीन्द्रिय विषयों की कल्पनाएँ जनसाधारण को धोखा देने के लिए हैं।

चार्वाक वैदिक कर्मकाण्ड एवं यज्ञ, यागादि का भी घोर विरोध करते हैं। वे वैदिक कर्मकाण्डों का उपहास करते हैं। उनके अनुसार स्वर्ग पाने के लिए, नरक से बचने के लिए तथा प्रेतात्माओं को तृप्त करने के लिए वैदिक कर्मकाण्ड निरर्थक हैं। वे वैदिक कर्मकाण्ड का विरोध करते हुए कहते हैं कि यदि यज्ञ में मारा गया पशु स्वर्ग जाता है तो व्यक्ति पशुओं के बजाय अपने माँ-बाप की बलि क्यों नहीं कर देते जिससे वे स्वर्ग जा सकें। वैदिक श्राद्ध-कर्म पर व्यंग्य करते हुए चार्वाक कहते हैं कि यदि श्राद्ध में अर्पित किया हुआ पदार्थ प्रेतात्मा की भूख मिटा सकता है तो पथिक भोजन-सामग्री लेकर यात्रा पर क्यों निकलता है? उसके कुटुम्बजनों को घर से ही उसकी भूख मिटाने के लिए भोज्य पदार्थ अर्पित कर देना चाहिए। तद्यथा-

मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।

निर्वाणस्य प्रदीपस्य स्नेहः संवर्द्धयेच्छिखाम्।। सर्व0 15

6.3.4 चार्वाक दर्शन की कामविषयक अवधारणा –

चार्वाक चारों पुरुषार्थों में काम को परम पुरुषार्थ मानता है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि जो कर्म काम की पूर्ति करे या सुख प्रदान करे वही उचित है। उनके अनुसार व्यक्ति द्वारा इन्द्रिय सुखों का उपयोग ही जीवन का लक्ष्य है। उसका आदर्श है, जब तक जीवित रहें सुख से रहें, उधार लेकर घी पियें क्योंकि देह के भस्म हो जाने के बाद पुनर्जन्म नहीं होता -

यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

चार्वाक दर्शन के अनुसार पारलौकिक और आध्यात्मिक सुख की आशा में ऐहिक सुख का परित्याग करना पागलपन है। उनकी यह भी मान्यता है कि दुःख के भय से सुख का त्याग करना मूर्खता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति भिक्षुकों द्वारा माँगे जाने के भय से भोजन पकाना नहीं छोड़ता, अथवा पशुओं द्वारा नष्ट किये जाने के भय से खेती करना नहीं छोड़ता उसी प्रकार दुःख के भय से सुख का परित्याग नहीं करना चाहिए। फिर, यदि सुख और दुःख परस्पर मिले हों तो सुख का ग्रहण और दुःख का परित्याग वैसे ही उचित है जैसे भूसे और गेहूँ मिले रहते हैं, किन्तु गेहूँ ले लिया जाता है और भूसा पशुओं के लिए छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार चार्वाक दर्शन केवल और केवल सुख का चिन्तन करता हुआ प्रतीत होता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर सहज ही यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि चार्वाक दर्शन की इन मान्यताओं ने मनुष्य के चित्त को उच्चतर जीवन के विचारों तथा आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों से बिलकुल हटाकर विषयभोग की दुनियाँ में केन्द्रित कर दिया। उसने विश्व को नियन्त्रित करने वाले ईश्वर तथा मनुष्य को सन्मार्ग पर लाने वाली अन्तर्दृष्टि का तो निषेध किया ही, परलोक, लोकोत्तर जीवन तथा पुनर्जन्म को भी अस्वीकार करके कर्मवाद के सिद्धान्त का भी तिरस्कार किया। चार्वाक दर्शन सुख की प्राप्ति के लिए इतना अधीर हो उठता है कि वह दुःख से बचने की भी कोशिश नहीं करता। फलस्वरूप उसने दर्शनशास्त्र को जीवन की साधना के स्तर से भी च्युत कर दिया। इस क्रम इसे इस प्रकार समझा जाना चाहिए कि चार्वक ने किसी दर्शन या विचार का प्रवर्तन नहीं किया बल्कि उस काल में व्याप्त सामाजिक व्यवस्था का लोगों की मानसिकता के अनुरूप् विरोध किया।

वस्तुतः उक्त विवेचन से ही हम इस दर्शन का वर्तमान व्यावहारिक सांसारिक जीवन से सम्बन्ध की स्थापना कर सकते हैं। यह चिन्तन एक ऐसा विचार है जो लोगों को सहज ही आकृष्ट कर लेता है। लोगों की रुचि के अनुकूल है। इस सन्दर्भ में, व्यावहारिक व सांसारिक जीवन के वर्तमान स्वरूप को समझना परमावश्यक है। इसके सवरूप को मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना के सन्दर्भ में नहीं समझा जाना चाहिए।

वर्तमान व्यवहार, व्यवस्था व संसार के स्वरूप की व्याख्या कर पाना सर्वथा दुष्कर है। इसका स्वरूप प्रतिक्षण बदलता रहता है इसलिये यह कह पाना कि यह ऐसा है यह वैसा है सर्वथा आपेक्षिक है। पुनरपि प्रतिदिन के प्रतिक्षण बदलते स्वरूप को ध्यान में रखकर एक सर्वस्वीकृत स्वरूप अवश्य ही निर्धारित किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

(1) चार्वाक के अनुसार मोक्ष है-

(क) पुनर्जन्म (ख) स्वर्ग (ग) मृत्यु (घ) कर्मबन्धन

(2) वेदों में प्राप्त धर्म, अधर्म आदि विषयों की कल्पनाएँ जनसाधारण के लिए ------ है।

(3) चार्वाक दर्शन का आदर्श वाक्य क्या है?

(4) चार्वाक दर्शन ने आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों को केन्द्रित कर दिया-

(क) उच्चतर मूल्यों में (ख) विषयोपभोग में

(ग) परमात्मा की प्राप्ति में   (घ) कर्मकाण्ड में

(5) चार्वाक मे कर्मवाद सिद्धान्त का-

(क) समर्थन किया   (क) प्रचार किया

(ग) अपमान किया   (घ) सिद्धान्त दिया

6.4 चार्वाक दर्शन के व्यावहारिक सिद्धान्त

6.4.1 रूढ़ि का विरोध -

यहाँ रूढ़ि से तात्पर्य समकालीन समाज में व्याप्त किसी ऐसी पारम्परिक भ्रान्त धारणा से है जिसका सम्बन्ध तर्क या विश्वास पर आधारित किसी मान्यता से न होकर उस समाज में प्रवर्तित अन्धविश्वास पर आधारित किसी अदृष्ट, अश्रुत, अज्ञात व अतिमायिक मान्यता से है। यथा- यात्रा पर निकलते समय बिल्ली के द्वारा रास्ता काटने पर अशुभ व अनिष्ट की संभावना कर बैठना। या पुरुष की बाईं ऑख के फड़कने से अनिष्ट तथा दाईं ऑख के फड़कने से अभीष्ट की प्राप्ति होना।

इससे पूर्व के पाठों में सम्यक्तया यह स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि चार्वाक लगभग सभी रूढ़ियों का उपहास उड़ाते हैं। सविशेष वेद एवं वैदिक आचार उनके कठोर प्रहार के विशिष्ट लक्ष्य रहे। वेद पर प्रहार का अर्थ इस प्रसंग में उस में निहित कट्टर कर्मकाण्ड की भर्त्स्ना किया जाता रहा है। आज भी यह विवाद का ही विषय है कि क्या उस तथाकथित कर्मकाण्ड से स्वर्गादि की प्राप्ति संभव है? आज भी हमारे समाज मे यज्ञ, त्रिदण्ड भस्म इत्यादि के सहारे जीविकोपार्जन करने वाले की कमी नहीं। इसी व्यवस्था के विरोध में कालान्तर में कबीरदास ने अपना स्वर मुखरित किया था कि

पाहन पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूं पहार।

ता ते चकिया भली कूट खाए संसार।।

मृत्यु के उपरान्त सम्पादित किये जाने वाले श्राद्धादि के विशिष्ट सन्दर्भ में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि श्राद्धकर्म में मरे हुए के लिये पिण्डदान रूप भोजन क्यों दिया जाता है। यदि पिण्डदान से मृतात्मा सन्तृप्त होता होगा तो यात्रा पर जाने वाले यात्री अपने साथ क्यों भोजन ले जाते हैं? क्यों नहीं घर बैठे उनके स्वजन श्राद्धप्रक्रिया के द्वारा उन्हें भोजन पहुंचा देते हैं?

भले ही चार्वाककालीन समाज में यह कथन वेद विरुद्ध रहा हो किन्तु आज यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि उक्त समस्त क्रिया, प्रक्रिया व प्रतिक्रिया विलुप्तप्राय हो रही हैं। कहीं तीन दिनों में ही मृतात्मा

के उक्त समस्त संस्कार कर दिये जाते हैं तो कहीं उसी दिन उस कार्य को सम्पन्न कर शोकाकुल परिवार निश्चिन्त से हो जाते हैं। हॉं, आज भी मिथिला, वाराणसी आदि प्रदेशों के कट्टर पण्डित समवाय में इसकी बीभीषिका देखी जाती है जहॉं श्राद्ध के नाम पर लाखों रूपये का अपव्यय होता है।

किसी भी समाज के पिछड़ेपन के कई कारणों में से एक कारण उसका रूढ़िग्रस्त होना है। रूढ़ि समाज की मानसिक दासता है जो प्रगतिवादी चिन्तन के मार्ग को सदैव अवरुद्ध करता है। अकर्मण्यता व निष्कर्मण्यता को इसी से बढ़ावा मिलता है। रूढ़ि का कोई कार्य कारण परिणाम नहीं होता। ऐसी स्थिति में, चार्वाक के द्वारा प्रवर्तित यह क्रान्ति वर्तमान व्यावहारिक सांसारिक व्यवस्था के लिये सर्वथा उपादेय है। इसका यह अर्थ नहीं कि रूढ़ि सर्वथा त्याज्य है या वेदादि का विरोध करना ही आधुनिक संसार का सृजन करता है बल्कि इसका अर्थ यह लिया जाना चाहिए कि समाज किसी ऐसी एकनिष्ठ विचारधारा का अनुवर्तक न रहे जो प्रगति व विकास के मार्ग में बाधक बने प्रत्युत विचारों की स्वतन्त्रता ऐसी प्रगति व विकास में साधक बने।

6.4.2 सुख का अन्वेषण-

अन्य सांसारिक वस्तुओं की इच्छा जिसकी इच्छा होने के कारण होती है वह भावात्मक वस्तु है सुख - इतरेच्छानधीनेच्छाविषयत्वं सुखस्य लक्षणम् (तर्कसंग्रह न्या0 बोधिनी)। इस धरा पर रहने वाला प्रत्येक मानव सुख के अन्वेषणमात्र में रहता है। उपनिषद् स्पष्टतया सुखप्राप्ति की बात करती है। वहॉं भले ही आत्यन्तिक अथ वा पारमार्थिक सुख की बात कही जा रही हो किन्तु मूल में एक ऐसे अभीष्ट की अभिलाषा संचित है जो जन्म जन्मान्तर के दुःखों का निषेध करती है। दुःख का निषेध व सुख की प्राप्ति का चिन्तन प्रायः समस्त भारतीय दर्शन चिन्तन में विद्यमान है। चार्वाक भी सुख की अवधारणा प्रस्तुत करता है।

चार्वाक दर्शन सुख की व्याख्या सर्वथा नूतन पद्धति से करता है। वे दुःख, कष्ट, पीड़ा आदि को इसी जीवन में प्राप्तव्य मानते हैं। चूंकि स्वर्ग, पुनर्जन्म आदि को वे नहीं मानते इसलिये समस्त भोक्तव्य, अभोक्तव्य आदि को इसी जन्म की अनिवार्यता मानते हैं। अतः सुख को ही परम लक्ष्य मानते हुए वे उसी को एकमात्र प्राप्तव्य मानते कहते हैं।

चार्वाक के अनुसार मानवमात्र का आदर्श सुख है। सुख इच्छित वस्तु की प्राप्ति है। इस सुख की प्राप्ति काम से होती है। काम मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अतः सुख प्राप्ति के लिये कामतृप्ति आवश्यक है। कामतृप्ति तथा सुख प्राप्ति वस्तुतः एक ही है। खाओ, पीओ तथा मौज करो यही मानव की ऐषणा है। इसलिये चार्वाक इसे अपनाने की प्रेरणा देता है। तदनुसार यही मनुष्य का आदर्श होना चाहिए। इस क्रम में चार्वाक किसी मर्यादा अथ वा नैतिकता की रेखा नहीं खींचता। सर्वदर्शनसंग्रह में इस सुख

को ही पुरुषार्थ कहा गया है- अंगनाद्यालिंगनादिजन्यं सुखमेव पुरुषार्थः। अर्थात् स्त्री के आलिंगन से उत्पन्न सुख ही पुरुषार्थ है।

एतदर्थ शास्त्रीय चिन्तन, धार्मिक अनुष्ठान, आध्यात्मिक निष्ठा आदि को वे आडम्बर मात्र कहते हैं। वात्स्यायन के कामसूत्र में प्रवर्तित इन्द्रियसुख को यद्यपि वे स्वीकार करते हैं पुनरपि परस्परापघातकं त्रिवर्गं सेवेत के कथ्य का वे अनुसरण नहीं करते। इनत तथ्यों को वे केवल मन के राज्य की कल्पना कहते है। ध्यातव्य है कि यद्यपि यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् की अवधारणा समस्त बन्धन को तोड़ने वाली होती है तथापि उसकी मौलिक अवधारणा को सामान्य तर्कमात्र से निराकृत नहीं किया जा सकता। आधुनिक समस्त संसार इसी सुखवाद के प्रति उन्मुख है। भले ही, इस उच्छृंखल सुखवाद का प्रत्यक्षतः अहित दिखता हो किन्तु अप्रत्यक्षतः किसी भी विचारधारा में इसका विरोध नहीं देखा जाता। प्रायः सारे समकालीन अथ वा आस्तिक विचारधारा में असत्य भाषण का विरोध है, लेकिन व्यावहारिक सांसारिक सम्बन्ध की दृष्टि से केवल इसका ही अनुपालन मात्र दिखता है। सुरापान, सुन्दरीसमागम आदि को महापाप की संज्ञा दिये जाने पर भी मनुष्य इस में लीन दिखते हैं, इन्हें त्याज्य नहीं मानते।

तात्पर्य यह है कि एक विचारधारा नैतिकता की लम्बी चौड़ी परिभाषा व उदाहरण प्रस्तुत करके भी उसके अनुपालन में असमर्थ है दूसरी ओर चार्वाक कटुसत्य ही सही किन्तु उसके अनुपालन की शिक्षा दे रहा है तो नैतिकता का उल्लंघन कहना लांछना मात्र प्रतीत होता है। वस्तुतः समाज की नैतिकता किसी सिद्धान्त से निर्धारित नहीं की जा सकती। मनुष्य आवश्यकतानुरूप अपनी यथासंभव नैतिकता का निर्धारण करता है। इस दृष्टि से, निस्सन्देह चार्वाक दर्शन के सुख का अन्वेषण आधुनिक व्यावहारिक सांसारिक सम्बन्ध की सुन्दरतम व्याख्या करता प्रतीत होता है। ऐसी व्यवस्था से◌े बचना व बचाना कठोर आत्मनिग्रह ही होगा।

6.4.3 भोगार्थ ऋण की कामना-

इससे पूर्व रूढ़ि एवं सुख की अवधारणा के विषय में आपने पढ़ा। इससे एक बात स्पष्ट हुई कि चार्वाक का सुख उच्छृंखल है। वह इसकी प्राप्ति के लिये किसी भी सीमा तक जा सकता है। यद्यपि किसी भी सीमा- इस प्रकार का कथन अनिर्वचनीय होता है पुनरपि प्राप्त उनके सर्वाधिक प्रसिद्ध पद्य का एक चरण सुख की प्राप्ति के लिये ऋणग्रहण तक करने का परामर्श दे देता है। यहॉ ऋण का अर्थ है अपनी उपयोगिता की सिद्धि के लिये किसी पर से आवश्यकतानुरूप वस्तु ग्रहण करना। ध्यातव्य है कि सर्वदर्शनसंग्रह में वर्णित चार्वाक दर्शन की प्रस्तावना में उद्धृत कारिका में उक्त चरण प्राप्त नहीं होता। तदनुसार-

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योयगोचरः।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः?

पुनरपि पूर्ववर्णित चरण को ही आधार मानकर यहाँ विवेचन किया जा रहा है। स्पष्टतः इस विचारधारा की मान्यता है कि सुख प्राप्त्यर्थ अवश्य ही ऋणादि ग्रहण कर लेना चाहिए। यद्यपि ऋणादि ग्रहण में की महती समस्या उसे पुनः लौटाने की होती है किन्तु इससे डरना नहीं चाहिए क्योंकि मृत्यु के उपरान्त मृत व्यक्ति से ऋण माँगेगा कौन? यहाँ ऋण का अर्थ है सुखोपभोगार्थ सर्वविध सुविधा का अनियन्त्रित उपभोग। कालान्तर में यह परम लक्ष्य सिद्ध हुआ।

यदि आधुनिक सन्दर्भ में इसका विश्लेषण किया जाय तो भारतीय चिन्तन धरा में आज से 2500 वर्ष

पूर्व बोया गया व्यावहारिक बीज समस्त आर्थिक व्यवस्था का आधार बन चुका है। सारी बैंकिंग प्रणाली इसी ऋण सिद्धान्त पर आधारित है। उपभोक्ता बैंक से ऋण ग्रहण करता है। घर, गाड़ी, टी वी आदि आधुनिक सुख सुविधाओं को प्राप्त करता रहता है। इस बैंकिंग प्रणाली के अन्तर्गत भी मृत्यु के उपरान्त ऋण वापस करने के सन्दर्भ में कुछ विशिष्ट छूट की व्यवस्था रहती है।

ध्यातव्य है कि उक्त प्रणाली का प्रारम्भ न तो चार्वाक दर्शन के सांगोपांग अध्ययन के उपरान्त प्रारम्भ किया गया न ही चार्वाक ने उक्त प्रणाली के लिये अपने इस सिद्धान्त का प्रवर्तन किया था। यह एक संयोग मात्र है कि चार्वाक के द्वारा प्रारम्भ की गयी यह अवधारणा आज भी सर्वथा प्रासंगिक प्रतीत हो रहा है। प्रत्यक्षतः भले ही इस विचारधारा पर कठोर प्रहार किया जाता रहा हो, परोक्षतः आज भी इसका अनुपालन होता दिख रहा है।

6.4.4 तनावमुक्ति के प्रयास -

समाज में हर गति व मति वाले लोग रहते हैं जो किसी न किसी रूप में किसी न किसी क्षण विविध समस्याओं से ग्रस्त रहते हैं। आस्तिक विचारधारा के दार्शनिको का यह मानना है कि ये समस्याएं तीन प्रकार की होती हैं- आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक। इन समस्याओं का साक्षात्कार हमें करना ही पड़ता है। इन समस्याओं, दुःखों अथ वा कष्टों के कारण होते हैं। कदाचित् वे कारण होते हैं एषणाओं की प्राप्ति न होना। यही तनाव का मूल कारण भी होता है। हम जब तक वर्जनाओं में बँधे होते हैं तब तक इस मनोवैज्ञानिक कष्टों को प्राप्त होते रहते हैं।

चार्वाक ने इसके लिये स्वतन्त्रता से जीने का एक मन्त्र दिया। एक ऐसे निःसंकोच जगत् का स्वरूप प्रदान किया जहाँ किसी मर्यादा के अधीन नहीं रहना पड़ता। सुख की प्राप्ति के लिये कुछ भी किया जाना, स्वर्ग, नरक, ईश्वर, पुनर्जन्म आदि का पूर्णतया निषेध करना, पाप पुण्य की अवधारणा को न

मानना आदि उक्त वर्जनाओं से छुटकारा का प्रयासमात्र है। भले ही आधुनिक स्थिति परिस्थिति में यह हमें उचित प्रतीत होता हो किन्तु इसे ही परम सत्य नहीं माना जाना चाहिए।

इस समस्त सन्दर्भ में चार्वाक चिन्तन को विशुद्ध बुद्धिवादी व तर्क की धरा पर खड़ा चिन्तन समझा जाना चाहिए। बुद्धि का ऐसा सूक्ष्म प्रयोग चार्वाकवादी धारणा को एक नये ही रूप में प्रस्तुत करता है। किन्तु सत्य के सम्बन्ध में एक विरल संकेत मात्र है जो हमें प्राप्त होता है। समान्यतया तो इस दर्शन चिन्तन का हमें विरूप चित्रण ही प्राप्त होता है।

दूसरी ओर चार्वाक युगों तक उपहास के पात्र बने रहे हैं। उन पर संभव असंभव, प्रत्येक प्रकार के दोषारोपण किये जाते रहे। परम्परा के विरुद्ध विचारधारा को मोड़ने का आक्षेप उन पर लगाया गया। किसी ने उसे नास्तिक शिरोमणि कहा तो किसी ने धूर्त शिरोमणि कह कर उपहास उड़ाया। एक दार्शनिक ने तो उन्हें पशुओं से भी अधिक पाशविक कहा है। उनके लिखित ग्रन्थों के भी जलाये जाने की अपुष्ट बातें की जाती रही। यहॉं तक कि इस विचारधारा को आगे पनपने नहीं दिया गया।

किन्तु आज हमारे लिये वस्तुगत दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। इस प्राचीन भारतीय भौतिकवादी दर्शन के मूल ग्रन्थों के अभाव में इसके अवदान का मूल्यांकन हमें बिना किसी पूर्वाग्रह के उपलब्ध सामग्री के गहन परीक्षण के द्वारा करना चाहिए। चार्वाक दर्शन को जिस विकृत रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है उससे हमें भ्रमित नहीं होना चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न

1. रुढ़ि का अर्थ है-

(क) शास्त्र समर्थित सिद्धान्त (ख) तर्क पर आधारित सिद्धान्त

(ग) अन्धविश्वास पर आधारित सिद्धान्त (क) इनमें से कोई नहीं

2. चार्वाक की दृष्टि में सुख है-

(क) ईश्वर की प्राप्ति (ख) स्त्री सुख

(ग) मृत्यु (घ) पापमुक्त होना

3. वात्स्यायन के द्वारा प्रवर्तित इन्द्रियसुख का लक्षण क्या है?

4. चार्वाक के ऋणसिद्धान्त का ही अपरूप कहा जाना चाहिए-

(क) चौर्य सिद्धान्त को (ख) अदृश्य होने की कला को

(क) धन संचय को (घ) बैंक से ऋण ग्रहण करने को

5. क्या चार्वाक दर्शन किसी न किसी रूप में तनाव से छुटकारा दिलवाने का प्रयास करता है?

6.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि चार्वाक एवं उनके अनुयायियों ने वैदिक काल से चली आ रही समस्त रूढ़ियों का विरोध किया। ईश्वर, पुनर्जन्म, स्वर्ग आदि का विरोध कर उन्होंने चिन्तन की धारा को एक नयी दिशा दी। सुख एवं काम को सर्वाधिक महत्त्व देकर चार्वाक ने समकालीन आवश्यकता को पहचाना। किसी भी अदृष्ट को फल का नियामक न समझकर उन्होंने मानव को सदा के लिये चिन्ता विमुक्त करने का प्रयास किया। एक तरह से समाज में व्याप्त समस्त वर्जनाओं को इन्होंने वर्जित करने का प्रयास किया। कदाचित् यही इसकी प्रासंगिकता भी है। इसके साथ ही यह भी आपको समझ लेना चाहिए कि यह सिद्धान्त सनातन नहीं बन पाया तथा यथाकाल अन्य दार्शनिक विचारों का विरोध इन्हें सहते रहना पड़ा।

इस इकाई के अध्ययन से आप चार्वाक के मतों को जानकर सहज ही जान पाएंगे कि चार्वाक दर्शन का वर्तमान व्यावहारिक सांसारिक जीवन से कैसे सम्बन्ध बनाये जा सकते हैं।

6.6 शब्दावली

आपकी सुविधा के लिये यहॉं इस पाठ में प्रयुक्त में जटिल व दुरुह शब्दों का सरलीकृत रूप दिया जा रहा है। आशा इनके माध्यम से भाषा व सिद्धान्तगत जटिलता को अत्यन्त सरलता से समझ पाएंगे। तद्यथा-

ज्ञानमीमांसा- चिन्तन की एक प्रक्रिया जिसमें सत्ता को ज्ञान अथ वा प्रमाण के द्वारा सिद्ध किया जाता है ज्ञानमीमांसा कहलाती है।

तत्त्वमीमांसा- दर्शन चिन्तन की प्रक्रिया जिसमें समस्त सृष्टि प्रक्रिया को समझने व समझाने का प्रयास किया जाता है। ज्ञानमीमांसा की तरह यह भी दाश्रनिक विचारधारा का अनिवार्य अंग है।

पुरुषार्थ- भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में मानवमात्र के परम लक्ष्य को पुरुषार्थ कहा जाता है। पुरुषार्थ चार हैं- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष।

निर्वाण- इसका अर्थ है दिये का बुझ जाना। यह बौद्ध दर्शन में मोक्ष के लिये प्रयुक्त होने वाला शब्द है। यह एक प्रकार से आत्यन्तिक दुःख का विनाश होना।

कैवल्य- सांख्य एवं योग योग दर्शन में मोक्ष के लिये कैवल्य शब्द का प्रयोग होता है। कैवल्य का अर्थ है अकेला हो जाना या सरल भाषा में अपनी सारी दुकान समेट लेना। निर्वाण की तरह कैवल्य भी मोक्ष का ही पर्याय है।

अपवर्ग- संस्कृत व्याकरण में इसका अर्थ है कार्यसिद्धि। किन्तु न्याय एवं वैशेषिक में मोक्ष के लिये अपवर्ग का प्रयोग किया जाता है जहॉं इसका अर्थ है दुःख से पूर्णतः मुक्त हो जाना।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.3 1. ग, 2. धोखा,

3. यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।

4. ख 5. ग

6.4 1. ग, 2. ख, 3. परस्परापघातकं त्रिवर्गं सेवेत।

4. घ, 5. हॉं

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. झा, आचार्य आनन्द, (1969) चार्वक दर्शन, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनउ,

2. तिवारी, डॉ0 नरेश प्रसाद, (1986), चार्वाक का नैतिक दर्शन, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना

3. ऋषि, प्रो0 उमाशंकर शर्मा, (1964), सर्वदर्शनसंग्रहः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-1

4. शर्मा, चन्द्रधर, (1991), भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

5. देवराज, डॉ0 नन्दकिशोर, (1992), भरतीय दर्शन, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनउ

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) चार्वाक दर्शन की आचारमीमांसा को विस्तारपूर्वक समझाएं।

(ख) चार्वाक दर्शन की कामविषयक अवधारणा पर एक निबन्ध लिखें।

(ग) चार्वाक विचारधारा किस प्रकार रूढ़ियों का विरोध करता प्रतीत होता है?

(घ) वर्तमान व्यावहारिक सांसारिक सम्बन्ध की दृष्टि से चार्वाक दर्शन की उपादेयता पर प्रकाश डालें।